वर्ष 1 अंक 1 मई 2024

वैदिक विज़न

पत्रिका

JITNA DEVI SEVA SANSTHAN

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट

JITNA DEVI SEVA SANSTHAN TRUST

पंजीकृत कार्यालय : ए-16, द्वितीय मंजिल, यूनिट-4, राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर, नई दिल्ली-110080
Regd. Office : A-16, Second Floor, Unit-4, Raju Park, Devli Road, Khanpur, New Delhi-110080
Mobile : 9953782813 • Email : jitnadevisevasansthan@gmail.com • Website : jitnadevisevasansthan.org

बच्चों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु

अमृत पॉल आर्य शिशु शाला

मान्यता प्राप्त कक्षा 1 से 5वीं तक

आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1

नई दिल्ली-110048 फोन : 011-46593498

प्रवेश 2024-25

प्ले ग्रुप से पांचवीं तक

एम.सी.डी. से मान्यता प्राप्त

संसार को श्रेष्ठ बनाने के उद्देश्य "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" के साथ मजबूत शैक्षणिक बुनियाद।

- योग्य, समर्पित और प्रेरक शिक्षक।
- बहुत कम फीस
- शिक्षक और छात्रों का अच्छा अनुपात।
- खुली हवादार कक्षाएँ।
- कंप्यूटर एवं स्मार्ट बोर्ड आधारित शिक्षा।
- सीसीटीवी कैमरे
- मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति उपलब्ध।
- शीघ्र प्रवेश और शुल्क में सिबलिंग रियायत।

3 वर्ष की आयु से

कक्षा 6 के लिए अमृत पॉल आर्य शिशु शाला निम्न स्कूलों की फीडर स्कूल है:-

1. कौटिल्या राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय, चिराग एन्क्लेव, नई दिल्ली-110048
2. सर्वोदय कन्या विद्यालय नं. 2, ईस्ट ऑफ़ कैलाश, नई दिल्ली-110065

Website: www.samajaryagk1.org | E-mail: aparyashishushala10@yahoo.com

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉर्क्स

- TPM Certified
- ISO / TS - 16949 - 2002 Certified
- ISO - 14001 Certified
- OHSAS - 18001 Certified

हमारे उत्पाद

★ स्ट्रट्स/गैस स्ट्रट्स
★ शॉक एब्जॉर्बर्स
★ फ्रन्ट फोर्कस
★ गैस स्प्रिँगस/विन्डो बैलेन्सर्स

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बस बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिँगस की टू व्हीलर/फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिँग प्लाँट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है ।

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं0 9–11, मारुति इडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव –122015, हरियाणा
दूरभाषः
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

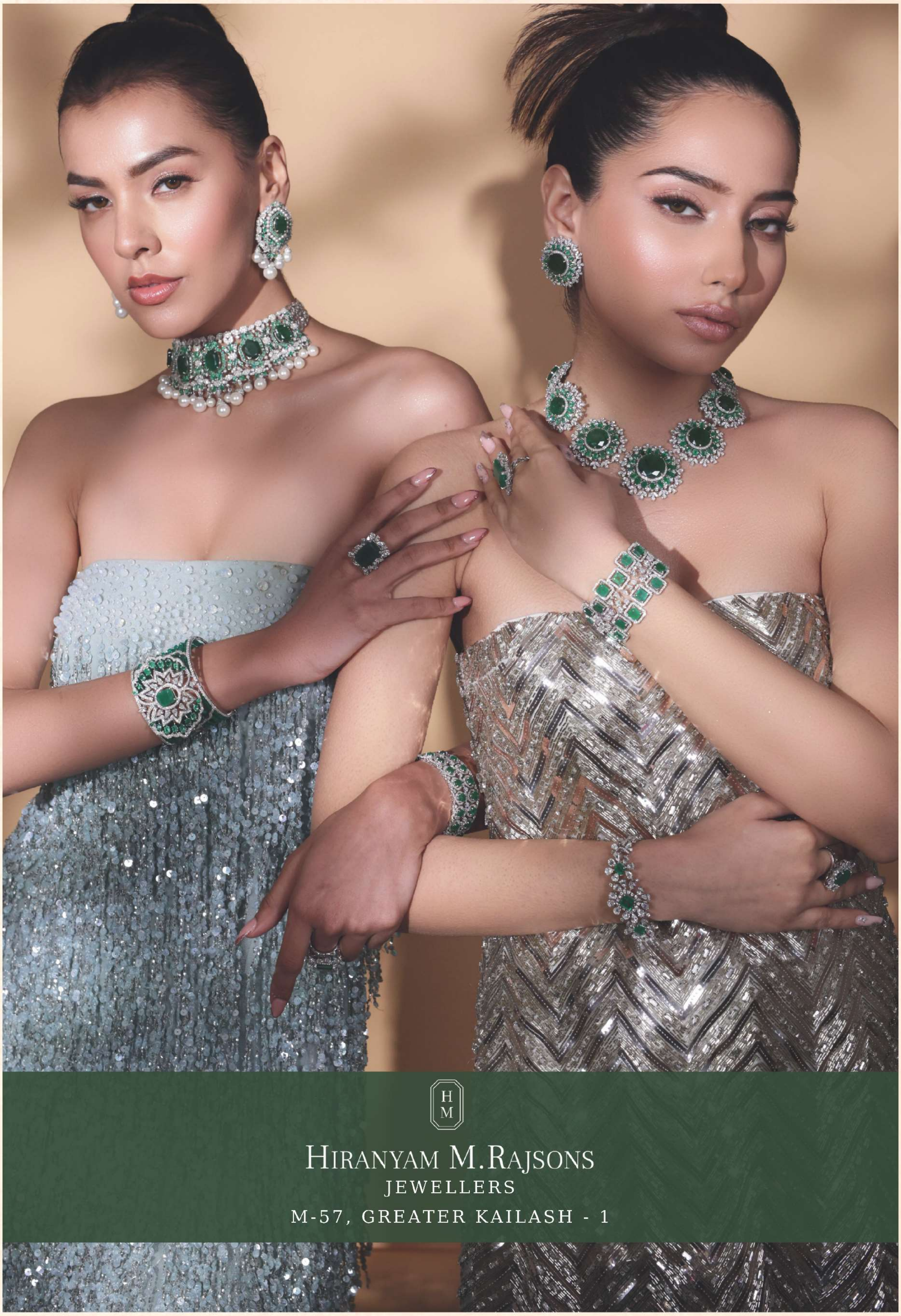
H
M
HIRANYAM M.RAJSONS
JEWELLERS
M-57, GREATER KAILASH - 1

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादक मण्डल		06
2	शुभकामना संदेश		07
3.	सम्पादकीय		15
4.	सत्यार्थ प्रकाश	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	16
5.	सत्संग का अर्थ और उद्देश्य	डॉ वागीश आचार्य	20
6.	वैदिक शिक्षा पद्धति मानव निर्माण की शिक्षा	डॉ. विनय विद्यालंकार	22
7.	अंत:करण चतुष्टय	डॉ. देवकृष्ण दाश	24
8.	जीतना देवी सेवा संस्थान द्वारा आयोजित नेत्र शिविर		27
9.	वैदिक समाज व्यवस्था एवं विश्वबन्धुत्व	डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री	34
10.	आर्य के गुण	रचना आहूजा	40
11.	संस्कार और इनका जीवन में महत्त्व	कु. कंचन आर्या	42
12.	भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु–शिष्य सम्बन्ध	डॉ. उमा आर्या	44
13.	कश्मीर की वैदिक परंपराए	डॉ. दिव्या राणा	46
14.	वर्ण व्यवस्था–बनाम–जाति व्यवस्था	अमला ठुकराल	51

वैदिक विज़न

पत्रिका

स्व. श्री सुन्दर प्रसाद

संस्थापक एवं प्रधान सम्पादक
सुरेन्द्र प्रताप

परामर्शदाता सम्पादक मण्डल
श्री विजय कृष्ण लखनपाल (प्रधान, आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली)

श्री राजेन्द्र कुमार वर्मा (मंत्री, आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली)

श्री अमर सिंह पहल (सेवानिवृत्त, राजकीय बाल विद्यालय, जे-ब्लॉक साकेत, नई दिल्ली)

सह-सम्पादिका
श्रीमती अमला ठुकराल (सेवानिवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्षा, दिल्ली पब्लिक स्कूल, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली)

विशिष्ठ सहयोगी
श्रीमती आदर्श आहूजा (सेवानिवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्षा, दिल्ली पब्लिक स्कूल, मथुरा रोड, नई दिल्ली)

विज्ञापन प्रतिनिधि
श्रीमती रेखा - 9315628113

शब्द संयोजन
प्रताप कम्प्यूटर्ज़, मदनगीर गाँव, नई दिल्ली-110062

मुद्रक
क्वालिटी प्रिन्टर्ज़,
1/622, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री से सम्बन्धित किसी भी विवाद का उत्तरदायित्व लेखक का होगा। स्पष्टीकरण प्रकाशित किया जायेगा। विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र केवल दक्षिण दिल्ली साकेत न्यायालय होगा।

सम्पादकीय कार्यालय

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट

ए-16, दूसरी मंजिल, यूनिट-4, राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर, नई दिल्ली-110080

Mob.: 9953782813 • Email : jitnadevisevasansthan@gmail.com

Website : www.jitnadevisevasansthan.org

दिनांक: 25.03.2024

शुभकामना संदेश

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट के द्वारा प्रतिष्ठित विद्वानों के साहित्य व विचारों व लेखों की पत्रिका **'वैदिक विज़न'** निकाल रही है। इस साहसी प्रयास के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ और इस प्रयास में वे सफल हों, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

(विजय लखनपाल)
प्रधान

आचार्य वीरेन्द्र विक्रम
(धर्माचार्य)
आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-110048

शुभकामना

अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट के सौजन्य से वैदिक विज़न नामक पत्रिका प्रकाशित की जा रही है।

समाज में वैदिक सिद्धांतों के प्रचार प्रसार के लिए यह पत्रिका उपयोगी बने तथा धर्म व कर्त्तव्य पथ पर नागरिकों का मार्ग दर्शन कर सके एसी अप्रेक्षाओं के साथ हार्दिक शुभ कामनाए प्रेषित करता हूँ।

(आचार्य वीरेन्द्र विक्रम)
धर्माचार्य

॥ओ३म्॥
दूरभाष : ०११-२६५२५६६३
ईमेल :-smdnyas99@gmail.com
श्रीमद्दयानन्द-वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास
११९, गौतमनगर, नई दिल्ली-११००४९
[संस्थापित श्रावण पूर्णिमा, संवत् १९९१ तदनुसार २४ अगस्त १९३४] [पंजीकरण संख्या १९५१ सन् १९९९]

क्रमाङ्क : दिनाङ्क : 11.04.2024

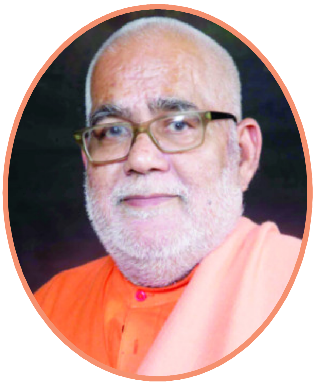

शुभकामना

अत्यन्त हर्ष की बात है कि **जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट** प्रतिष्ठित विद्वानों के साहित्य, विचारों व लेखों की **'वैदिक विज़न'** नामक पत्रिका प्रकाशित कर रही है। समाज में वैदिक सिद्धांतों के प्रचार प्रसार के लिए यह पत्रिका उपयोगी बने तथा धर्म व कर्त्तव्य पथ पर नागरिकों का मार्ग दर्शन कर सके। इस पत्रक के माध्यम से वैदिक साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने का यह प्रयास श्लाघनीय है। इस साहसी प्रयास के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ और इस प्रयास में वे सफल हों, ऐसी मेरी ओर से बहुत शुभकामनाएँ और आशीर्वाद।

प्राचार्य

स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

सेवा में,
श्री सुरेन्द्र प्रताप, संस्थापक अध्यक्ष
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट
ए-16, द्वितीय तल, यूनिट-4, राजू पार्क,
देवली रोड, नई दिल्ली-110080

MUNJAL SHOWA LIMITED

Registered Office & Works : 9-11, Maruti Industrial Area, Sector - 18, Gurugram - 122 015 (Haryana) INDIA
E-mail : msladmin@munjalshowa.net Website : www.munjalshowa.net
Corporate Identity Number : L34101HR1985PLC020934, PAN : AAACM0070D
Phone : 0124-4783000

शुभकामना

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि '**जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट**' की ओर से '**वैदिक विज़न**' नामक पत्रिका प्रकाशित हो रही है।

युवा पीढ़ी का कार्य विशेषकर सराहनीय है। पत्रिका में प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा विचारात्मक लेख लिखे गए हैं। यह प्रयत्न प्रशंसा के योग्य है।

हमें गर्व है कि 'जीतना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट' द्वारा अनेक लोकोपकारी गतिविधियाँ भी चलाई जा रही हैं।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनायें प्रेषित कर रहा हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

योगेश

(योगेश मुंजाल)
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
M/s मुंजाल शोवा लिमिटेड

Manufacturers of World Class Struts, Shock Absorbers, Front Forks, Gas Springs-Window Balancers in Collaboration with Hitachi Astemo Ltd., Japan

Congratulations on the inaugural issue of magazine dedicated to Vedic Wisdom for **Jitna Devi Seva Sansthan Trust**. Your passion for sharing this ancient knowledge shines through every page.

Here's to a successful journey ahead, spreading enlightenment and inspiration to all who delve into its pages.

Cheers to you, for this remarkable achievement.

J. Prakash

(Jay Prakash)
Assistant Commissioner,
MCD, Narela Zone

पहली पत्रिका प्रकाशित करने के लिए बधाई ! आपका पहला कदम सफलता की ओर है। यह पत्रिका आपके उत्कृष्टता को प्रकट करे और पाठकों को भी प्रभावित करे। ज्ञानवर्धक लेख पाठकों का मार्गदर्शन करे।

अनंत शुभकामनाएं !

(राजेश कुमार)
अवर सचिव,
इस्पात मंत्रालय, भारत सरकार

USHAARTH ART FOUNDATION

Perception • Promotion • Dialogue

I wish you great success at your admirable venture of publishing a magazine for the Jitna Devi Seva Sansthan Trust. Publications such as this greatly benefit society by stimulating a positive, constructive thought process.

The Ushaarth Art Foundation is a not-for-profit trust, founded in the memory of Mrs. Usha Lakhanpal, a great patron of Indian traditional and fine arts, crafts and textiles.

The primary aim of the trust is to increase awareness about Indian modern and contemporary visual fine art especially among the youth. The Foundation produces interview-based films on artists called "The Way I See" The films document the journey of an artist in their own words from their childhood, their struggle, teachers who inspired them, their current studio practise and a chronological documentation of their paintings.

We have a special focus on schools that show an exemplary commitment towards educating children from the underprivileged and physically challenged parts of society. We also aim to help young struggling artists through scholarships and grants.

Wishing you great success with this new venture.

Shruti.

Dr. Shruti Lakhanpal Tandon
Founder
Ushaarth Art Foundation

W 77A, Greater Kailash I,
New Delhi-110048

Registered Trust

www.ushaarth.com
ushaarthartfoundaion@gmail.com

Dr Vinod K Malik *M.S.*

Former Chair, Department of Lap & Gen Surgery
Dean
Sir Ganga Ram Hospital
Rajinder Nagar New Delhi 110060
DMC #27748 **vinod.k.malik@gmail.com**

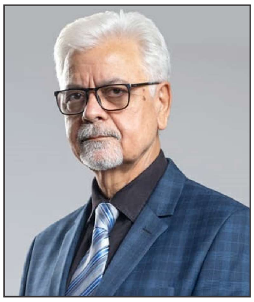

Mar 29, 2024

प्रताप जी,

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आप **वैदिक विज़न** नाम की एक पत्रिका निकाल रहे हैं। आशा है की यह पत्रिका सरल और व्यवहारिक तरीके से हमें हमारे वैदिक विचारों को परिपक्व करने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगी। ऐसा हमारा विश्वास भी है और अपेक्षा भी। आप मानवता के लिए एक धरोहर गढ़ने का कार्य करने जा रहे हैं जो अपने आप में एक बहुत ही सराहनीय काम है। आपको अपने इस उपक्रम में सफलता मिले ऐसी हमारी मंगल कामना है। इस पत्रिका में जो दर्शन हमें पढ़ने के लिए मिलेगा वह हमारे जीवन के लिए एक मार्गदर्शक का काम करेगा। आपके और आपके साथियों को हमारी ओर से बहुत-बहुत शुभकामनाएं और बधाई।

Dr Vinod Kumar Malik
Senior consultant Department of Surgery
Clinic B 231/B Basement Greater Kailash Part-1,
New Delhi 110048

Dr. Rachna Khanna Singh

- Consultant Holistic Medicine & Wellness at Artemis Hospital, Gurgaon.
- Founder and Director of The Mind & Wellness Studio, Delhi
- Executive Director, NGO Serve Samman, which aims at empowering children, youth, and women.

The Mind And Wellnes Clinic
Dr Rachna K Singh's

I extend my heartfelt acknowledgment and gratitude for your exceptional dedication and contributions throughout the years. Your unwavering commitment to excellence, tireless efforts, and passion have been a source of inspiration for us all. Your professionalism, expertise, and willingness to go above and beyond have left an indelible mark on our team.

Congratulations on the inaugural issue of the magazine **'Vedic Vision'** dedicated to Grand Mother 'Smt. Jitna Devi' for the **'Jitna Devi Seva Sansthan Trust'**. Your dedication to sharing this profound knowledge resonates in every aspect of the publication.

Here's to a journey filled with success, as you continue to spread enlightenment and inspiration through its pages. Your commitment to this endeavor is truly commendable.

Cheers to you for this remarkable achievement.

With sincere appreciation,

Dr. Rachna Khanna Singh
M-65 Greater Kailash, Part-1,
New Delhi-110048
rachnaksingh1@gmail.com

serve SAMMAN
SHARE • CARE • HELP

SERVE SAMMAN
NGO with a Difference
M-65, Greater Kailash-I, New Delhi- 110048 (India)
+91-11-49055030, 47155030 • +91-9310286664
www.servesamman.org
dipak@servesamman.org

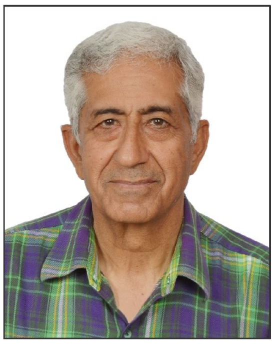

I extend my heartfelt acknowledgment and gratitude for your exceptional dedication and contributions throughout the years. Your unwavering commitment to excellence, tireless efforts, and passion have been a source of inspiration for us all. Your professionalism, expertise, and willingness to go above and beyond have left an indelible mark on our team.

Congratulations on the inaugural issue of the magazine **'वैदिक विज़न'** dedicated to Grand Mother 'Jitna Devi' for the **'Jitna Devi Seva Sansthan Trust'**. Your dedication to sharing this profound knowledge resonates in every aspect of the publication.

Here's to a journey filled with success, as you continue to spread enlightenment and inspiration through its pages. Your commitment to this endeavor is truly commendable.

Cheers to you for this remarkable achievement.

With sincere appreciation,

SERVE SAMMAN ★ NEW DELHI

(DIPAK KHANNA)
Managing Director
Serve Samman

सम्पादकीय......

आर्य समाज के प्रांगण में वैदिक विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त कर तथा प्रवचन सुनते हुए मन में ये विचार आया कि क्यों न उनके अमूल्य वचनों को लिपिबद्ध किया जाए। वास्तव में बचपन में पूज्या दादी जी स्व. श्रीमती जितना देवी द्वारा जो संस्कार दिए गए उनका प्रस्फुटन इस पत्रिका के रूप में हुआ। **'जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट'** द्वारा **'वैदिक विज़न'** नामक इस पत्रिका में आर्य जगत् के लब्धप्रतिष्ठ वैदिक विद्वानों के विचार तथा लेख सम्मिलित किए गए हैं जिससे पाठकों को वेदों को समझने व वैदिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त हो सके। सत्य ही कहा गया है **"महाजनाः येन गताः सः पन्थाः"**।

हम आभारी हैं इन वैदिक विद्वानों के जिन्होंने सहर्ष इस कार्य के लिए अपनी स्वीकृति दी तथा अपना अमूल्य समय निकालकर बहुमूल्य लेख इस पत्रिका में छपने हेतु प्रदान किए। मैं उन लोगों का भी आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य परामर्श देकर पत्रिका सम्पादन के इस पुण्य कार्य में अपना विशेष सहयोग दिया।

सुरेन्द्र प्रताप
सम्पादक

विज्ञापनदाताओं से अनुरोधः

1. दिए गए विज्ञापन का प्रूफ फाइनल करने में अनावश्यक देरी ना करें।
2. नया विज्ञापन बुक करने के लिए विज्ञापन की CDR या PDF File ईमेल करें अथवा विज्ञापन की लिखित जानकारी व लोगो आदि ईमेल करें।
3. प्रूफ रीडिंग करते समय फोन/मोबाइल नम्बर, ईमेल व अन्य जानकारियां ठीक से जाँच कर लें। एक बार विज्ञापन फाइनल होने के बाद पुनः सुधार केवल अगले अंक में ही सम्भव हो पाता है।
4. विज्ञापन का एडवांस शुल्क ऑनलाइन द्वारा जमा करायें अथवा चैक पत्रिका के पते पर भेजें।

बैंक विवरणः

"जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट" (Jitna Devi Seva Sansthan Trust) के नाम बैंक चैक/डीडी होगें।

बैंक–**भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)**, शाखा – 16, कम्यूनिटि सैन्टर जमरूदपुर, ग्रेटर कैलाश–1, नई दिल्ली–110048 • फोन नं. – 011-29231327 • **खाता संख्या – 42550746731**, आई.एफ.एस.सी./आर.टी.जीएस./ई.सी.एस. कोड सं. – SBIN0001078 • माइकर कोड (MICR CODE) 110002042 • पैन नं. AAETJ7079A • सम्पर्क नं. 09953782813

सत्यार्थ प्रकाश

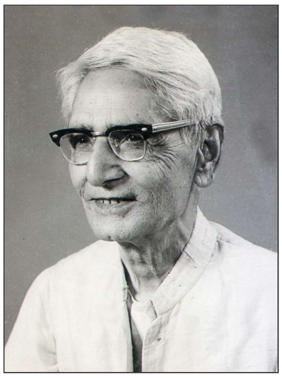

लेखक परिचय : डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार-कुलपति गुरुकुल कांगड़ी (1935), राज्य सभा सदस्य (1964)। लेखक - वैदिक साहित्य तथा होम्योपैथी, नैरोबी के अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन में अध्यक्ष (1978)। प्रादेशिक सरकारों ने तथा अन्य संस्थाओं ने साहित्यिक विद्वत्ता पर सम्मानित तथा पुरस्कृत किया। आपको आपकी पुस्तक 'समाजशास्त्र के मूल-तत्त्व' (1960) पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया गया।

ऋषि दयानन्द का जन्म 1824 ई० में हुआ था। वे 1860 में गुरु विरजानन्द जी के पास विद्याध्ययन के लिए पहुँचे। उस समय उनकी आयु 36 वर्ष की थी। 1863 में उन्होंने अपने गुरु से दीक्षा ली और उनके पास से अध्ययन समाप्त कर जीवन-क्षेत्र में उतर पड़े। इस समय वे 39-40 वर्ष के हो चुके थे। विरजानन्द जी के पास उन्होंने जो कुछ सीखा वही उनकी वास्तविक शिक्षा थी क्योंकि इससे पहले वे जो-कुछ पढ़ आये थे उसे विरजानन्द जी ने भुला देने की उनसे प्रतिज्ञा ली थी। इस प्रकार ऋषि दयानन्द जी की यथार्थ शिक्षा 1860 से 1863 तक-अर्थात् कुल तीन वर्ष ही हुई थी। उन्होंने पीछे चलकर अपने जीवन-काल में जितने व्याख्यान दिये, जितने ग्रन्थ लिखे, जितने शास्त्रार्थ किए, वह तीन साल के अध्ययन का ही परिणाम था। इसी से स्पष्ट होता है कि इन तीन सालों में उन्होनें जो पाया था वह कितना मूल्यवान् था।

अपने गुरु विरजानन्द जी से ऋषि दयानन्द ने जो गुर पाया था वह आर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों में भेद करना था। 36 वर्ष की आयु से पहले उन्होंने जो-कुछ पढ़ा था वह अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन था। आर्षग्रन्थों के अध्ययन का उनका कुल समय तीन वर्षों का था। इन तीन वर्षों के अध्ययन ने उनके जीवन, उनकी विचारधारा में जो क्रान्ति उत्पन्न कर दी उससे भारत के पिछले सौ वर्षों का इतिहास बन गया।

इस क्रान्ति का मूल-स्रोत उनका ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' है। सत्यार्थ-प्रकाश 1874 में लिखा गया। मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास जब काशी में डिप्टी कलेक्टर थे तब ऋषि दयानन्द काशी पधारे। राजा जयकृष्णदास ने ऋषि से कहा-आपके उपदेशामृत से वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं जो आपके व्याख्यान सुनते हैं। जिन्हें आपके व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं मिलता उनके लिए अगर आप अपने विचारों को ग्रन्थ रूप में लिख दें, तो जनता का बड़ा उपकार हो। ग्रन्थ के छपने का भार राजा जयकृष्णदास ने अपने ऊपर ले लिया। यह आश्चर्य की बात है कि यह बृहत्काय तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिसे पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने 14 बार पढ़कर कहा कि हर बार के अध्ययन से उन्हें नया रत्न हाथ आता था, कुल साढ़े तीन महीनों में लिखा गया। जिन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश का गहराई से अध्ययन किया है, उन्होंने पाया है कि इसमें 377 ग्रन्थों का हवाला है। इस ग्रन्थ में 1542 वेद मन्त्रों या श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। चारों वेद, सब ब्राह्मण ग्रन्थ, सब उपनिषद, छहों दर्शन, अठारह स्मृति, सब पुराण, सूत्र ग्रन्थ, गृह्य सूत्र, जैन-बौद्ध ग्रन्थ, बाइबल, कुरान-सबका उद्धरण ही नहीं, उनका रेफ़रेन्स भी दिया गया है। किस ग्रन्थ में, कौन-सा मन्त्र या श्लोक, या वाक्य कहाँ है, उसकी संख्या क्या है-यह सब-कुछ इस साढ़े तीन महीनों में लिखे ग्रन्थ में मिलता है। आज का कोई रिसर्च स्कालर अगर किसी विश्वविद्यालय की संस्कृत की अप-टु-डेट लाइब्रेरी में, जहाँ सब ग्रन्थ उपलब्ध हों, इतने रेफ़रेन्स वाला कोई ग्रन्थ लिखना चाहे, तो भी उसे सालों

लग जायें जिसे ऋषि दयानन्द ने साढ़े तीन महीनों में तैयार कर दिया था। साधारण ग्रन्थ की बात दूसरी है, सत्यार्थ-प्रकाश एक मौलिक विचारों का ग्रन्थ है, ऐसा ग्रन्थ जिसने समाज को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिला दिया। जिन ग्रन्थों ने संसार को झकझोरा है उनके निर्माण में सालों लगे हैं। कार्ल मार्क्स ने 34 वर्ष इंग्लैण्ड में बैठकर 'कैपिटल'-ग्रन्थ लिखा था जिसने विश्व में नवीन आर्थिक दृष्टिकोण को जन्म दिया, किन्तु ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' साढ़े तीन महीनों में लिखा था जिसने नवीन सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म दिया। दोनों का क्षेत्र अलग-अलग था, मार्क्स के ग्रन्थ ने युरोप का आर्थिक ढाँचा हिला दिया, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ ने भारत का सांस्कृतिक तथा सामाजिक ढाँचा हिला दिया।

सत्यार्थ प्रकाश चुने हुए क्रांतिकारी विचारों का ख़ज़ाना है-ऐसे विचार जिन्हें उस युग में कोई सोच भी नहीं सकता था। समाज की रचना 'जन्म' के आधार पर न होकर 'कर्म' के आधार पर होनी चाहिए-सत्यार्थ प्रकाश का यही एक विचार इतना क्रांतिकारी है कि इसके क्रिया में आने से हमारी 90 प्रतिशत समस्याएँ हल हो जाती हैं। ऐसे संगठन में जन्म से न कोई नीचा, न कोई ऊँचा, न कोई जन्म से गरीब, न कोई अमीर, जो कुछ हो कर्म से हो-ऐसी स्थिति में कौन-सी समस्या है जो इस सूत्र से हल नहीं हो जाती। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का विचार सत्यार्थ- प्रकाश की ही देन है जिसे पकड़कर उत्तर-भारत में जगह-जगह गुरुकुलों का ताँता बिछ गया। आज भी हमारी शिक्षा-प्रणाली की जो छीछालेदर हो रही है उसका इलाज गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के सिद्धान्तों में ही निहित है। लोकमान्य तिलक ने कहा था-स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया था। इन सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के 8वें समुल्लास में लिखा था- 'कोई कितना ही कहे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' ऋषि दयानन्द के ये वाक्य उस जगत्-प्रसिद्ध अंग्रेज़ी वाक्य से जिसमें कहा गया था- "Good government is no substitute for self government" इतने मिलते-जुलते हैं कि 1874 में अंग्रेजों के राज्य में कोई व्यक्ति यह लिखने का साहस कर सकता हो-यह जानकर आश्चर्य होता है।

आज जिन समस्याओं को लेकर हम उलझे रहते हैं, हरिजनों की समस्या, स्त्रियों की समस्या, गरीबी की समस्या, शिक्षा की समस्या, देश-भाषा की समस्या, चुनाव की समस्या, नियम तथा व्यवस्था की समस्या, विनोबा भावे की गो-रक्षा की समस्या, नसबन्दी की समस्या, आचार की समस्या, नवयुवकों की समस्या-कौन सी समस्या है जिसका हल सत्यार्थ-प्रकाश में मौजूद नहीं है। और, कौन-सा हल है जो आज के राजनीतिज्ञों ने ऐसा ढूँढ निकाला है जो सत्यार्थ-प्रकाश में पहले से नहीं है।

हिन्दू-समाज में सबसे बड़ी समस्या वेदों की थी। यहाँ हर-कोई हर बात के लिए वेदों का नाम लेता था। स्त्रियों तथा शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं? क्योंकि वेदों में लिखा है-**'स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्'** बाल-विवाह क्यों होना चाहिए? क्योंकि वेदों में लिखा है-**'अष्टवर्षा भवेत्गौरील नववर्षा च रोहिणी दश वर्षा भवेत् कन्या तत् उध्वै रजस्वला। माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च, त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्याँ रजस्वलाम्।'** जन्म से वर्ण- व्यवस्था क्यों मानें? क्योंकि वेद में लिखा है-**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**- ब्राह्मण परमात्मा के मुख से और शूद्र उसके पाँव से उत्पन्न हुए। जैसे मुख बाहू और बाहू मुख नहीं बन सकता इसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण नहीं बन सकता। जब ऋषि दयानन्द ने यह देखा कि वेदों का नाम लेकर हर संस्कृत-वाक्य को वेद कहा जा रहा है, और वेदों का उद्धरण देकर वेद-मन्त्रों का अनर्थ किया जा रहा है, तब उन्होंने निश्चय कर लिया कि वेदों को ही केन्द्र बना कर हिन्दू-समाज की रक्षा की जा सकती है, और वह रक्षा तभी हो सकती है जब जन-साधारण को समझ पड़ जाए कि वेदों में कहा क्या गया है। ऋषि दयानन्द ने वेदों से वेदों पर प्रहार किया।

वैदिक वाङ्मय के संबंध में ऋषि दयानन्द की खोज यह थी कि हर संस्कृत-वाक्य तथा हर संस्कृत-ग्रंथ वेद नहीं हैं। ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, सूत्र-ग्रंथ-ये सब वेद नहीं हैं। इन ग्रन्थों में जो-कुछ लिखा है वह अगर वेद-विरुद्ध है, तो वह त्याज्य है, जो वेदानुकूल है, वही ग्राह्य है। ऋषि दयानन्द का हिन्दू-समाज को कहना यह था कि अगर वेद को तुम अपनी संस्कृति का आधार मानते हो, तो इस पैमाने को लेकर चलना होगा, तुम जो चाहो वह वेद नहीं, वेद जो है वह मानना होगा। इस कसौटी पर कसने से हिन्दू-समाज की 90 प्रतिशत रूढ़ियाँ अपने- आप गिर जाती थीं। इस विचारधारा को प्रकट करने के लिए उन्होंने दो शब्दों का प्रयोग किया- 'आर्षग्रन्थ' तथा 'अनार्ष ग्रन्थ'। अब तक संस्कृत -साहित्य में इस दृष्टि को किसी ने नहीं अपनाया था। संस्कृत के हर ग्रंथ में जो-कुछ लिखा मिलता था वह प्रामाणिक माना जाता था। ऋषि दयानन्द ने इस विचार को ठोकर मारकर गिरा दिया।

वेदों के संबंध में ऋषि दयानन्द की दूसरी खोज यह थी कि वेदों के शब्द रूढ़ि नहीं, यौगिक हैं। यद्यपि यह विचार नया नहीं था, निरुक्तकार का यही कहना था, तो भी वेदों के सभी भाष्यकारों ने वैदिक शब्दों के रूढ़ि अर्थ ही किये थे। सायण, उव्वट, महीधर तथा उनके पीछे चलते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने-मैक्समूलर, रॉथ, विल्सन, ग्रासमैन ने-मक्खी- पर -मक्खी मार अनुवाद किया था। सायण आदि एक तरफ़ वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे, दूसरी तरफ़ उनमें इतिहास भी मानते थे जो वेदों के ईश्वरीय-ज्ञान होने के सिद्धान्त से टकराता था। इस बात की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। असल में सायण का भाष्य किसी गंभीर विद्वत्ता से नहीं किया गया था, वह एक विशिष्ट लक्ष्य को सामने रखकर किया गया था। दक्षिण के विजयनगरम हिन्दू-राज्य के राजा हरिहर और बुक्का के वे मन्त्री थे। मुस्लिम संस्कृति राज्य में प्रतिष्ठित न हो जाय, इसलिए संस्कृत वाङ्मय का प्रसार करना मात्र इस भाष्य का उद्देश्य था। यही कारण है कि सायण के भाष्य गहराई तक नहीं गये और असंगत बातों के शिकार रहे। वह यज्ञों का समय था इसलिए भाष्यकार समझते थे कि वेदों के अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता सचमुच स्वर्ग से यज्ञों में पधारते हैं और दान-दक्षिणा आदि लेकर तथा यजमान को आशीर्वाद देकर स्वर्ग चले जाते हैं। पाश्चात्य विद्वानों को यह बात अपनी विचारधारा के अनुकूल पड़ती थी। उनका विचार विकासवाद पर आश्रित था। आदि-मानव जंगली था, जंगली आदमी सूर्य को, अग्नि को, वायु को देवता समझकर पूजे तो यह युक्ति युक्त प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वान् कहने लगे कि वैदिक ऋषि क्योंकि जंगली थे इसलिए अनेक देवताओं को पूजते थे। इस निष्कर्ष में सायण आदि के भाष्य उनके विचार की पुष्टि करते थे।

ऋषि दयानन्द ने इस विचार को भी ठोकर मारकर गिरा दिया। वेदों से ही उन्होंने सिद्ध किया कि अग्नि आदि नाम भिन्न-भिन्न देवताओं के नहीं, एक परमेश्वर के ही ये भिन्न-भिन्न नाम हैं। ऋग्वेद (१, १६४, ४६) में लिखा है-

'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निम् यमं मातरिश्वानमाहुः'

परमात्मा एक है, उसे अनेक नामों से स्मरण किया जाता है। इस एक मन्त्र से सारा-का-सारा विकासवाद, कम-से- कम जहाँ तक वेदों का सम्बन्ध है, ढह जाता है।

ऋषि दयानन्द का कहना था कि वैदिक शब्दों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं- आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। उदाहरणार्थ, इन्द्र का आधिभौतिक अर्थ अग्नि, विद्युत, सूर्य आदि हैं; आधिदैविक अर्थ राजा, सेनापति, अध्यापक आदि दैवीय गुण वाले व्यक्ति हैं; आध्यात्मिक अर्थ जीवात्मा, परमात्मा आदि है। इसी प्रकार अन्य शब्दों के विषय में कहा जा सकता है। इस कसौटी को सामने रखकर अगर वेदों को समझा जाये, तो न उनमें इतिहास मिलता है, न बहुदेवतावाद मिलता है, न जंगलीपन मिलता है, न विकासवाद मिलता है।

वेदों के जितने भाष्यकार हुए हैं-इस देश के तथा विदेशों के-उनमें सबसे ऊँचा स्थान ऋषि दयानन्द का है।

अगरवेदों को किसी ने समझा तो ऋषि दयानन्द ने। अरविन्द घोष ने लिखा है:

"In the matter of Vedic interpretation Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and agelong misunderstanding, his was the eye of direct vision, and pierced to the truth and fastened on that which was essential."

इस युग के महायोगी श्री अरविन्द का कहना है कि "जहाँ तक वेदों का प्रश्न है दयानन्द सबसे पहला व्यक्ति था जिसने वेदों के अर्थों को समझने की असली कुंजी को खोज निकाला। वेदों का अर्थ समझने के लिए सदियों से जिस अन्धकार में हम रास्ता टटोल रहे थे उसमें दयानन्द की दृष्टि ही इस अन्धकार को भेद कर यथार्थ सत्य पर जा पहुँची थी।"

19वीं शताब्दी में भारत में अनेक समाज- सुधारक हुए। ऋषि दयानन्द, राजा राम मोहन राय, केश्वचन्द्र सेन इसी युग की उपज थे। वे सब एक तरफ़ हिन्दू समाज के पिछड़ेपन को देख रहे थे, दूसरी तरफ़ पश्चिमी देशों की प्रगतिशीलता को देख रहे थे। यह सब देखकर वे हिन्दू समाज की रूढ़ियों को दासता से मुक्त करना चाहते थे। ऋषि दयानन्द तथा दूसरों की विचारधारा में भेद यह था कि जहाँ दूसरे हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दुत्व को ही समाप्त करने पर तुल गए, वहाँ ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं के हिन्दू रहते हुए उन्हें नवीनता के नये रंग में रंग दिया। कोई वृक्ष जड़ के बिना नहीं खड़ा रह सकता। जड़ कट जाय, तो वृक्ष जड़ के बिना नहीं खड़ा रह सकता। जड़ कट जाय, तो वृक्ष गिर जाता है। जड़ को मज़बूत बना कर जो वृक्ष उठता है वहीं टिका रहता है। कोई समाज अपने भूत के बिना नहीं जी सकता। भूत में पैर जमाकर भविष्य की तरफ़ बढ़ना-पीछे भी देखना, आगे भी देखना-यही किसी समाज के जीवन का गुर है। ऋषि दयानन्द ने इसी गुर को पकड़ा था। पीछे वेदों की तरफ़ देखो, उसमें जमकर आगे भविष्य की तरफ़ पग बढ़ाओ; भूत को छोड़ दोगे तो वृक्ष की जड़ कट जाएगी, भविष्य को नहीं देखोगे तो उठ नहीं सकोगे-यह ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश का सन्देश है, यही ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य का सन्देश है।

कर्म की उत्पत्ति

कर्म की उत्पत्ति 'ज्ञान' से (ब्रह्म शब्द का अर्थ 'वेद' है, 'वेद' का अर्थ 'ज्ञान' है) होती है, 'ज्ञान' की उत्पत्ति 'अक्षर'-अविनाशी परमेश्वर से होती है। यह अक्षर सर्वव्यापी परमेश्वर सदा यज्ञ में विद्यमान रहता है॥

यह सारा चक्र अक्षर-सर्वव्यापी - परमेश्वर से चला। परमेश्वर से 'ज्ञान' हुआ, ज्ञान से 'कर्म' हुआ, कर्म से 'यज्ञ' हुआ, यज्ञ से 'पर्जन्य' हुआ, पर्जन्य से 'अन्न' हुआ, अन्न से 'प्राणी' का शरीर हुआ। शुरू से अन्त तक यह जो सारी प्रक्रिया हुई, सारा कर्म हुआ, उसका नाम गीता ने 'यज्ञ' रखा है। अगर सृष्टि की यह सारी प्रक्रिया, यह सारा 'कर्म' गीता के कथनानुसार 'यज्ञ' है, तो इस सारी 'प्रक्रिया', इस सारे 'कर्म', इस सारे 'यज्ञ' के भीतर वर्तमान इस प्रक्रिया को, 'कर्म' को, 'यज्ञ' को चलानेवाला कौन है ? सृष्टि की इस सारी प्रक्रिया को, इस सारे 'कर्म' को, इस सारे चक्र को जिसे गीता ने 'यज्ञ' का नाम दिया है, परमेश्वर के सिवाय कौन चला सकता है ? इसलिये गीता ने कहा- "वह नित्य सर्वव्यापी भगवान् सदा 'यज्ञ' में, सृष्टि के 'कर्म' में वर्तमान रहता है।"

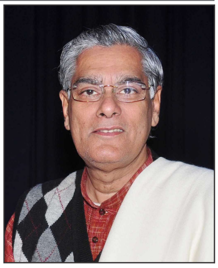

सत्संग का अर्थ और उद्देश्य

डॉ. वागीश आचार्य-कुलसचिव
आर्ष गुरुकुल, एटा, उ.प्र.

सत्संग का अर्थ होता है- अच्छा संग, अच्छे लोगों का संग, अच्छे विचारों का संग। धर्मशास्त्रों ने और सभी अध्यात्मिक विद्वानों तथा महापुरुषों के सत्संग पर बहुत बल दिया है। कारण यह है कि हमारा मन ही हमें अच्छे या बुरे मार्ग पर ले जाता है **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** मन ही बन्धन का कारण है तथा मन ही मुक्ति का साधन है। मन के बिना हम कोई भी अच्छा या बुरा कार्य नहीं कर सकते। किसी भी काम को करने या कुछ भी जानने की प्रक्रिया यह है कि हमारा मन किसी इन्द्रिय के द्वारा संयुक्त होता है तभी इन्द्रियों से होने वाला ज्ञान या कर्म सम्भव होता है। जैसे मन यदि आँख के साथ संयुक्त नहीं है तो आँखें खुली होने पर भी देख नहीं सकेंगे, यदि अन्दर-अन्दर कुछ सोच रहे हो तो कोई कुछ भी बोलता रहे, सुनायी नहीं देगा। किसी भी कार्य या ज्ञानप्राप्ति के लिये मन सब से प्रमुख साधन है। इसलिये निश्चित हुआ कि हमारे मन में जिस तरह के विचार, भावनाएँ और संस्कार होंगे हमारा मन उसी दिशा में प्रवृत्त होगा।

जैसा हम अन्दर-अन्दर अपने मन में सोचते हैं, हमारे वे विचार एक दिन हमारी वाणी से निकलने लगते हैं, फिर वे ही विचार हमारे कर्म में झलकने लगते हैं, फिर जैसा हमने बार-बार सोचा, जैसा बार-बार बोला जैसा बार-बार किया, वे बार-बार सोचे गये विचार, बार-बार भी कही गई बातें, बार-बार किये गये कर्म, हमारे संस्कार बन जाते हैं, फिर उन संस्कारों के कारण मनुष्य बार-बार वैसा ही सोचता, बोलता और करता है। जैसे कि संस्कार है, फिर उस, विचार, वाणी और व्यवहार से उसके वैसे ही संस्कार और प्रबल हो जाते हैं। इस तरह यह एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा **"अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरूषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः"** मनुष्य न चाहते हुए भी पाप की ओर कैसे प्रवृत्त हो जाता है? जैसे कि किसी ने अन्दर से बलपूर्वक उस काम को करने के लिये धकेला हो? श्रीकृष्ण का उत्तर है कि हमारे विचार और माँ से बता संस्कार पुंज ही हमें बलपूर्वक उस दिशा में ले जाता है। महाभारत में ही वर्णन है कि जब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाया कि तुम यह अनुचित कृत्य मत करो तो दुर्योधन ने कहा कि **"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। केनापि दैवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।"** दुर्योधन ने कहा कि केशव! मुझे मत समझाओ कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है? मैं धर्म अधर्म, उचित अनुचित सब जानता हूँ, किन्तु अन्दर कोई प्रबल शक्ति है जिससे विवश होकर मैं अनुचित, अधर्म, आचरण करता हूँ। अन्दर की वह प्रबल प्रेरणा वही है जो हमारे संस्कारों के रूप में हमें उस दिशा में धकेलती है। इसलिये समाधान यही है कि मन के विचार भावनाएँ और संस्कार अच्छे बनाये जायें।

प्रश्न उठता है कि मन के विचारों, संस्कारों को

अच्छा या बुरा बनाना हमारे हाथ में है? उत्तर है-हाँ। यदि हम चारों और प्रयास करें तो मन को जैसा चाहे जैसा बना सकते हैं। उपाय है सत्संग! जैसे लोगों और विचारों की संगति में अब ज्यादा रहेंगे-वैसा ही प्रभाव आपके मन पर पड़ेगा और आपके मन की बनावट वैसे ही होती जायेगी। यदि आप क्रोधी हैं और शान्त स्वभाव के होना चाहते हैं। कायर हैं और साहसी होना चाहते हैं तो ऐसे ही लोगों के साथ रहें, ऐसे ही विचारों वाली पुस्तकों का अध्ययन करें, मन में ऐसे ही विचार बार-बार लायें, तो मन की बनावट वैसी होती जायेगी, जैसी आप चाहते हैं। इसीलिये सभी महापुरुषों ने सत्संग का महत्त्व वर्णित किया है, क्योंकि सत्संग में पहुँच कर हम अनायास बातों के वातावरण में ढल जाते हैं, उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है, वहाँ बोले गये वाक्य और विचार हमारे अन्तर्मन में प्रवेश करते हैं। इसलिये समय-समय पर सत्संग का आयोजन करना तथा उस में सम्मिलित होना जीवन की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

CHETAN PRAKASH
9999822020

RAMA ENTERPRISES

MFRS. & SUPPLIERS OF OIL SEALS
& RUBBER PARTS

M-11 Gali No. 1, Industrial Area, Anand Parbat,
New Rohtak Road, New Delhi-110005
E-mail : ramaoilseals@gmail.com

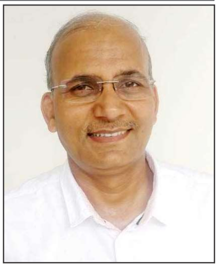

वैदिक शिक्षा पद्धति मानव निर्माण की शिक्षा

प्रो. विनय विद्यालंकार-प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सोवन सिंह जीना विश्वविद्यालय परिसर-चम्पावत (उत्तराखण्ड)

सत्य सनातन वैदिक धर्म का आधार चार वेद रहे हैं, वैदिक मान्यता है कि सृष्टि के आदि में परमपिता परमात्मा ने मानवमात्र के कल्याण व प्राणिमात्र के हित के लिए चार वेदों का ज्ञान प्रदान किया। अग्नि ऋषि के माध्यम से 'ऋग्वेद', वायु ऋषि के माध्यम से 'यजुर्वेद', आदित्य ऋषि के माध्यम से 'सामवेद' व अंगिरा ऋषि के माध्यम से 'अथर्ववेद' का ज्ञान दिया। यह ज्ञान ऋषियों के माध्यम से प्राप्त ही हुआ किन्तु यह 'अपौरुषेय' ज्ञान कहा जाता है। वेदों का विषय विभाजन इस प्रकार है –

ऋग्वेद – ज्ञान काण्ड (ज्ञान-विषय)
यजुर्वेद – कर्मकाण्ड (कर्म-विषय)
सामवेद – उपासना काण्ड (उपासना-विषय)
अथर्ववेद – विज्ञान काण्ड (विज्ञान-विषय)

इन चारों वेदों के वर्ण्य विषयों से ज्ञात होता है कि मनुष्य जीवन का संचालन करने हेतु सर्वप्रथम ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान के भी दो विभाग किए जा सकते हैं-'स्वाभाविक ज्ञान' व 'नैमित्तिक ज्ञान' स्वाभाविक ज्ञान वह होता है जो जन्म से ही जीवन निर्वाह (संचालन) हेतु स्वतः आ जाए जैसे उड़ने वाला पक्षी स्वतः उड़ना सीख जाता है, तैरने वाले पशुपक्षी स्वतः ही जल में तैरने लगते हैं, उन्हें उड़ने व तैरने की शिक्षा कहीं से लेनी नहीं पड़ती। जबकि मनुष्य जीवन में स्वाभाविक ज्ञान 'न' के बराबर होता है, उसे सब कुछ सिखाना पड़ता है, बिना गुरु के वह कुछ भी नहीं सीख पाता। शिक्षा या सिखाने पर मिलने वाला ज्ञान 'नैमित्तिक' ज्ञान कहलाता है। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य से इतर सभी प्राणी स्वतः (स्वाभाविक रूप से) ही सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर लेते हैं, जबकि मनुष्य को सभी क्षेत्रों का ज्ञान नैमित्तिक रूप से ही प्राप्त होता है।

मैं प्रायः कहा करता हूँ कि 'गौ' पैदा होने से 'गौ' बन जाती है, 'अश्व' पैदा होने से ही 'अश्व' बन जाता है। चिड़िया, आदि पक्षी कीट, पतंग, चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी स्वाभाविक रूप से ही उस-उस योनि का जीवन जीते हैं जबकि मनुष्य पैदा होने से या मनुष्य शरीर प्राप्त करने मात्र से ही मनुष्य नहीं हो जाता बल्कि उसे मनुष्य 'बनाना' होता है, मनुष्य बनना पड़ता है। वेद में कहा है-

"मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्"

अर्थात् 'मनुष्य बनो तथा अपनी विद्या से अन्यों को भी मनुष्य बनाओ" मनुष्य को शिक्षित करने के लिए प्राचीन काल में जिस पद्धति या प्रक्रिया का प्रयोग कर उसे मनुष्य बनाया जाता था, उसी को वैदिक शिक्षा पद्धति कहा जाता है। वैदिक व्यवस्था के अनुसार मनुष्य जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए जिस व्यवस्था को उपयोगी व परिणाम दायिनी माना गया है वह है 'आश्रम' व्यवस्था। मनुष्य की आयु को सामान्यतः 100 वर्ष मानकर उसके चार भाग किए गये, उनके लिए 25-25 वर्ष का समय दिया गया, जन्म से 25 वर्ष तक की अवस्था को 'ब्रह्मचर्याश्रम', 25 से 50 वर्ष तक 'गृहस्थाश्रम', 50 से 75 वर्ष तक 'वानप्रस्थाश्रम' व 75 से 100 तक संन्यास-आश्रम निर्धारित किया गया। प्रथम आयु का भाग संग्रहकाल है जिसमें शारीरिक-मानसिक व आत्मिक विकास के लिए शक्ति

व ऊर्जा का संग्रह करना होता है, जिसे एक व्यवस्था (System) के साथ किया जाय, मनुष्य जीवन का प्रारम्भ सर्वांगीण विकास के साथ हो, जिस काल में पूरा समय सदुपयोग हो, शिक्षा व संस्कारों का समन्वित विकास हो, अनेक क्षेत्रों की विद्या प्रदान की जा सके, इसके लिए 'ब्रह्मचर्याश्रम' है। इस आश्रम के प्रारम्भ में यह ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है कि बालक या माता-पिता की गोद से ही शिक्षा प्रारम्भ कर दें। माता उसे वर्ण-उच्चारण (वर्तनी) की शिक्षा स्वयं दे, पिता भी सामान्य रूप से विषयों का ज्ञान देना प्रारम्भ कर दे, तब 5 से 8 वर्ष की आयु के मध्य माता-पिता अपनी सन्तान को आचार्यकुल में देने को प्रवृत्त हों। शतपथ ब्राह्मण में कहा है-"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् मनुष्य को मनुष्य बनाने की प्रक्रिया में प्रथम गुरु माँ ही होती है, दूसरे गुरु 'पिता' है तत्पश्चात् आचार्य के पास जाना होता है। उपर्युक्त उक्ति का शाब्दिक अर्थ है - माँ वाले, पिता वाले तथा आचार्य वाले मनुष्य को ही पुरुष जानो या मनुष्य जानो। उन्नीसवीं सदी के महान् समाज सुधारक, वेदोद्धारक-युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने करोड़ों वर्ष प्राचीन वैदिक मान्यताओं व शिक्षा पद्धति का पुनरुद्धार किया। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में 'बाल शिक्षा' विषय का प्रारम्भ करते हुए इसी वाक्य-"मातृमान् पितृमान्......................" उद्धृत किया और उसकी व्याख्या में अपना ऋषित्व प्रकट करते हुए कहा-'यस्य माता धार्मिकी विदुषी प्रशस्ता स मातृमान्" अर्थात् जिसकी माँ धार्मिक प्रवृत्ति की, धर्म के अर्थ की जानने वाली, वेद शास्त्रों की विदुषी तथा जीवन का मार्ग प्रशस्त करने वाली है वही माता वाला है" (शेष जननी वाले तो हो सकते हैं) किन्तु माता वाले नहीं। इसी प्रकार जिसका पिता धार्मिक विद्वान् व मार्ग प्रशस्त करने वाला है वही पिता वाला है। आचार्य-गुरु या शिक्षक को सबसे बड़ा दायित्व वैदिक शिक्षा पद्धति में दिया गया है-"**आचारं ग्राहययति आचिनोति अर्थान् बुद्धिमिति वा**" आचार्य का दायित्व शिक्षण शिष्य को आचरण (सदाचरण) की शिक्षा देना वह भी अपने उत्तम आचरण से ही देना।

महर्षि दयानन्द जी ने मनुष्य को मनुष्य बनाने का उत्तम केन्द्र आचार्यकुल- गुरुकुल को ही बताया है।

वैदिक व्यवस्था में जिस प्रकार प्रथम जन्म माँ के गर्भ से होता है जहाँ शरीर का निर्माण व विकास देता है, सूक्ष्म रूप से संस्कारों का आधान भी होता है उसी प्रकार द्वितीय जन्म आचार्यकुल में आचार्य के गर्भ से ही होता है तभी मनुष्य को 'द्विज' कहा जाता है। वेद में कहा-

ओ३म् आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्री तिस्रो विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि सयन्ति देवाः॥ (ब्रह्मचर्य सूक्त अथर्व.)

अर्थात् माता-पिता अपनी सन्तति (बालक-बालिका) को आचार्य के समीप जाकर उसे सांस देते हैं-गर्भ में स्थापित कर देते हैं, तब आचार्य उसे तीन रात्रि (यह तीन सनन-स्तर का वाचक है) न्यूनतम 12 वर्ष तक अथवा समस्त वेद-वेदांगों के अध्ययन 48 वर्ष की आयु तक (आदित्य ब्रह्मचारी) पूर्ण विद्वान बनाकर समाज को (माता-पिता की) सौंपता है तो उसे मनुष्य व देव बने हुए को देखने के लिए देवता भी उत्सुक होते हैं।

यह सुव्यवस्थित - सुनियोजित गुरुकुलीय शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य या 'देव' बनाने वाली होती है। वर्तमान में दी जाने वाली शिक्षा केवल किताबी ज्ञान देने वाली है जिसमें युवक-युवती दिक्षाहीन-शिक्षा लेकर भटक रहे हैं। सूचनाओं का संग्रह हो खूब कर लिया होता है किन्तु जीवनी शिक्षा का नितान्त अभाव होने के कारण तनाव, अवसाद के निराशा से घिरे मनुष्य बनाए जा रहे हैं। मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने के लिए व सफल - सुफल मनुष्य बनाने के लिए वैदिकी शिक्षा को पुनः प्रचारित-प्रसारित करने की आवश्यकता है। ■■

अंत:करण चतुष्टय

डॉ. देवकृष्ण दाश

प्राणिमात्र के हृदय प्रदेश में विद्यमान जीवात्मा स्वभाव से **नित्य** है, अर्थात्, उत्पत्ति और विनाश से रहित है। यह **शुद्ध** भी है, अर्थात्, बाल्य-युवा-वृद्ध अवस्थादि से अप्रभावित, अपरिणामी है। यह जीवात्मा स्वभाव से **बुद्ध** भी है, अर्थात्, सदा ज्ञान शक्ति से युक्त रहता है; साथ में यह **मुक्त** भी कहलाता है, अर्थात्, सत्त्व-रज-तमोगुणों वाली प्रकृति से सर्वथा अस्पृष्ट, यानी, भिन्न और निर्गुण तत्त्व होता है।

हमारे इस जीवात्मा में इतनी शक्तियां होने पर भी, इतनी दिव्य संभावनाएं होने पर भी यह स्वभाव से अल्पज्ञ है, इसलिए यह प्राय: अविद्या-ग्रसित रहता है। यह निराकार (आकार से रहित) है। बहुत सूक्ष्म और परिमाण से बहुत नगण्य-सा है। दर्शनाशास्त्रियों ने इसे अणु परिमाण वाला पदार्थ बताया है। सब पदार्थों से सर्वथा पृथक् अस्तित्व वाला होने से हमारा यह जीवात्मा परिच्छिन्न (सब ओर से अलग) कहलाता है। हैरानी की बात यह है कि इस सूक्ष्म, अणु परिमाण वाले और परिच्छिन्न जीवात्मा के ज़र्रे ज़र्रे में परमात्मा समाया हुआ होता है!

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि जीवात्मा के अंदर परमात्मा की सर्वदा विद्यमानता होने पर भी, तिल में तेल की भांति इतनी निकट स्थिति में जीवात्मा और परमात्मा का संबंध दिखाई पड़ने पर भी ये दो सत्ताएं सर्वदा अलग अलग विद्यमान रहती हैं। ये दोनों तत्त्व किसी भी द्रव्य से अमिश्रित होने के कारण अपनी अपनी इकाई में विलक्षण हैं। एक विभु है, अर्थात्, सर्वव्यापक परमात्मा है तथा दूसरा अणु परिमाण वाला जीवात्मा है, जो हृदय रूपी या शरीर रूपी एकदेश में विद्यमान रहता है।

यह सूक्ष्म सत्ता हमारा जीवात्मा निराकार होने से निरवयवी (हाथ-पैर-आंख-नाक-कान, आदि शारीरिक अवयवों से रहित) भी होता है। इस जीवात्मा को अपना सांसारिक व्यवहार सिद्ध करने के लिए प्रत्येक जन्म में एक नए शरीर की आवश्यकता होती है। इस प्राणिशरीर में विद्यमान चार अंत:करणों और दस बाह्यकरणों की मदद से यह निर्गुण जीवात्मा सुख और दु:ख का अनुभाव करता है।

प्राणि-शरीरस्थ इस जीवात्मा के ये दस बाह्यकरण (साधन) होते हैं-पांच ज्ञानेंद्रियां और पांच कर्मेंद्रियां। उसी तरह इसके ये चार अंत:करण भी होते हैं-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

दस बाह्यकरण हों या चार अंत:करण-ये सबके सब जड़ हैं क्योंकि ये अचेतन प्रकृति से बने हुए होते हैं। अत: इन बाह्य और अंत:करण रूपी साधनों द्वारा संगृहीत विषयों को केवल और केवल चेतन जीवात्मा ही उपभोग करता है। अत: चेतन जीवात्मा इन साधनों से इस दृश्यमान जगत् का समस्त भोग ग्रहणकर भोक्ता कहलाता है।

ऐसा ही कुछ विचार दर्शन शास्त्रों में प्राप्त होता है,

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात्। साख्य दर्शन 6.55

अर्थ : समस्त भोग चेतन पुरुष के लिए है। उसी चेतन पुरुष-कृत कर्मों के द्वारा यह भोग अर्जित होने से।

समस्त भोग ग्रहण में जीवात्मा इन्हीं अंत:करण और बाह्यकरणों के द्वारा अनेक अच्छे और बुरे कार्यों को भी कर बैठता है। अत: वह भोक्ता के साथ साथ कर्त्ता भी कहलाता है।

योगदर्शन भी अंत:करण के साथ उस चेतन जीवात्मा का घनिष्ठ संबंध बताता है,

द्रष्टा दृशिमात्र: शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्य:।

योगदर्शन 2.20

अर्थ : द्रष्टा [कर्त्ता और भोक्ता], ज्ञान-स्वरूप जीवात्मा शुद्ध होने पर भी, अर्थात्, प्राकृतिक गुणों-धर्मों से

अमिश्रित, अज्ञान, अधर्म, विकारादि दोषों से स्वभावत: रहित होने पर भी चित्त की, अंत:करण की वृत्तियों के अनुसार देखनेवाला होता है।

जीवात्मा का अंत:करण के साथ साक्षात् संबंध होने से अंत:करण में उभरता हुआ प्रत्येक विचार को वह अपना समझकर तत्काल जानता है और उसी की लहरों में स्वयं बहने लगता है। अविद्यादि दोष, प्रारब्ध कर्म, गलत क्रियमाण कर्म, संगदोषादि कारणों से अल्पज्ञ जीवात्मा प्राय: मलिन विचारों वाला होता है। जीवात्मा की उस मलिनता की छाप अंत:करण में पड़कर मलिन विचारों को जन्म देती है। जीवात्मा रूपी साध्य और अंत:करण रूपी साधन के मलिन हो जाने पर चित्त में उठ रहे तात्कालिक समझ के अनुसार जीवात्मा जिसे बुरा समझता है, उसका प्रतिकार करता है और जिसे अच्छा समझता है उसको अपनाने लगता है।

जीवात्मा का अंत:करण के साथ संबंध ही जीवन का हर उतार-चढ़ाव और पाप-पुण्यमय कर्मसमुदाय के पीछे प्रमुख कारण माना जाता है।

अंत:करण और जीवात्मा-इन दोनों का पूर्णत: विद्याप्रेरित होकर परिशोधित हो जाना ही जीवात्मा की दु:ख-निवृत्ति या मुक्ति कहलाती है, **सत्त्व-पुरुषयो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति** (योग दर्शन 3.55)।

जीवात्मा का अंत:करण चतुष्टय, उसके लिए महत्त्वपूर्ण अवयव होने से उन सभी की विशद चर्चा निम्नलिखित प्रकार से की जाती है।

अंत:करण चतुष्टय में क्रमश: मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार की गिनती होती है। इन चार साधनों में से मन सबसे अधिक सक्रिय एवं प्रभावशाली होने से सर्वप्रथम उसकी चर्चा करते हैं।

मन :- (1) 'मन्' ज्ञाने या अवबोधने इस धातु से मन शब्द बनता है। इसका अर्थ हुआ जिस साधन के द्वारा जाना जाता है, ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह मन है [**ज्ञायते अवबोध्यते येन तन्मन:**]।

(2) जीवात्मा के पास दु:ख और सुख को अनुभव करने का जो स्वाभाविक ज्ञान है, उसका अनुभव इसी मन के माध्यम से ही संभव हो पाता है। साथ में सांसरिक, जागतिक, अध्यात्मिक, आदि जितने नैमित्तिक ज्ञान हैं, उनको भी इसी मन रूपी अंत:करण की सहायता से प्राप्त किया जाता है।

(3) मन की प्रकृति के संबंध में उपनिषत् में एक रोचक बात बताई गई है,

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि: सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति:।
छांदोग्योपनिषत् 7.26.2

अर्थ : शुद्ध और सात्त्विक आहार के सेवन से मन-प्रधन अंत:करण शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अंत:करण की स्थिति में पुरुष को निश्चल स्मृति शक्ति (पूर्ण एकाग्रता की स्थिति) की प्राप्ति होती है।

इससे मिलती जुलती एक कहावत है, 'जैसा खाए अन्न वैसा बने मन।' तात्पर्य यह हुआ शुद्ध और सात्त्विक आहार द्वारा मन में एकाग्रता प्राप्त होती है। इस स्थिति में वह स्थिर तथा संतुलित बना रहता है। इसके विपरीत आहार से मन असंतुलित होता है। अत: मन के इस स्वभाव से साधक को सदा परिचित रहना चाहिए।

(4) मन खाने की, घूमने की, सुनने, देखने, खेलने और सोने की इच्छा कर सकता है, अर्थात्, मन रूपी साधन के माध्यम से जीवात्मा की विविध इच्छा शक्तियां जागृत होती हैं। जीवात्म-शक्ति से अनुप्रेरित हमारा यह मन बड़ी बड़ी कल्पना करने की क्षमता रखता है। मन अनुमान को जन्म देकर लाकर बड़े से बड़े आविष्कार और उद्‌भावन को जन्म देता है।

(5) मन सर्वाधिक गतिशील तत्त्व है। उसकी गति के आगे क्या सूर्य, क्या गैलक्सी और शब्द प्रमाण से सिद्ध क्या मुक्तिलोक है? इन्हें यह पलभर में परिक्रमा लगा लेता है।

(6) यजुर्वेद 34.1-6 के शिवसंकल्प सूक्त में कहा गया कि मन में याद रखने की अमित शक्ति है। जैसे-रथ की नाभि में चारों ओर से आए हुए अरे लगे होते हैं, वैसे मन चार वेदों के ज्ञान-विज्ञान को तथा अपनी इंन्द्रियों द्वारा सभी ओर से गृहीत समस्त विषयों को याद रख सकता है और जरूरत पड़ने पर उन विषयों को वह ठीक ठीक अनुभव भी करा सकता है।

(7) यजुर्वेद का शिवसंकल्प सूक्त कहता है, यह चंचल मन जाग्रत और स्वप्नावस्था में दूर तक भागता है। योगदर्शन का कथन है कि अभ्यास तथा वैराग्य के परिपालन से इस गतिशील और असंयत मन को, जो सांसारिक वृत्तियों की मार से प्राय: असंतुलित रहता है, वश में किया जाता है (योगदर्शन 1.12)।

(8) इसी मन में कार्य करने की संकल्पशक्ति और कार्य न करने की विकल्पशक्ति विद्यमान रहती है। यह एक साथ स्वपक्ष और विपक्ष दोनों दलीलों को उजागर करता है, पर यह उठाए गए किसी भी विचार का समाधन नहीं कर पाता है। इसलि, दर्शनशास्त्रियों ने मन को —**संकल्प-विकल्पात्मकं मन:** कहा है।

(9) कई बार यह मन जीवन की प्रत्येक आवश्यकता को इच्छा के रूप में प्रकट करता है, परंतु प्रत्येक इच्छा हमारी आवश्यकता की पूर्ति में सहायक हो--यह जरूरी नहीं है। अत: मन द्वारा उठाई गई प्रत्येक इच्छा को पूर्ण होश में, हानि-लाभ के आकलन के साथ क्रियान्वित करना चाहिए।

अच्छी और बुरी इच्छाओं के सतत क्रियान्वयन से जीवात्मा को कर्मबंधन में बांधनेवाला तथा मोक्षमार्ग की ओर ले चलने वाला यह मन ही होता है--मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो: (मैत्रायण्युपनिषत् 4.3)।

(10) दर्शनशास्त्र में मन की एक विशेषता बताई कि यह एक समय में केवल एक ही पदार्थ का पूर्णत: ज्ञान ग्रहण करता है (न्यायदर्शन 1.1.16)। अगर एक समय में मन के समक्ष एकाधिक विषय आ जाते हैं तो यह अपनी पंसद के किसी एक पदार्थ का ज्ञान ग्रहण करता, बाकी सब छोड़ देता है (वैशेषिक दर्शन 3.2.1)। यह इसीलिए होता है क्योंकि मन परमात्मा जैसा विभु-परिमाण वाला नहीं है, वह तो अणु-परिमाण वाला है (वैशेषिक दर्शन 7.1.23)। अत: परमात्मा की तुलना में इसकी छोटी-सी शक्ति है।

(11) अणु-परिमाण वाला यह मन हृदयदेश में रहता हुआ (यजुर्वेद 34.6) भी अपनी शक्ति द्वारा सभी दस इंद्रियों में सुप्रविष्ट या अनुप्रविष्ट रहता है। तभी तो सांख्यदर्शन 2.26 में **उभयात्मकं मन:** कहकर मन को उभय इंद्रियों का स्वामी तथा एकादश इंद्रिय का स्थान दिया गया है।

(12) कठोपनिषत् 1.3.3, 4 में बताया गया कि सांसरिक विषय जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध हैं, ये हैं इंद्रिय रूपी घोड़ों के विचरण करने के मार्ग। इन घोड़ों की लगाम कहलाने वाला मन बुद्धि की सहायता से इन्हें अच्छे या बुरे विषयों में प्रवृत्त कराता है। तात्पर्य यह हुआ कि मन दस इंद्रियों का प्रवर्तक, निर्वतक तथा नियामक है-**मनो हि हेतु: सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने** (सुभाषित)।

अणु-परिमाण वाला यह मन जिस इंद्रिय में आविष्ट होकर विषय रूपी भोग ग्रहण करता है, केवल वही इंद्रिय पूर्ण सक्रिय रहती है। वह जिस इंद्रिय में आविष्ट नहीं होता वह इंद्रिय विषय भोग ग्रहण में असमर्थ होती है। तभी तो खराब मन:स्थिति के कारण या किसी अन्य विषय में मन की एकाग्रता हो जाने के कारण हमारे सम्मुख उपस्थित माता-पिता, गुरु-आचार्य, आदि पूज्य व्यक्तियों का हम यथायोग्य आदर-सत्कार नहीं कर पाते हैं।

(13) पूर्वोक्त शिवसंकल्प सूक्त में ईश्वर से प्रार्थना यह की गई कि संकल्प और विकल्पात्मक मेरी इस मन की वृत्तियों में से हे ईश्वर! आप मुझे हमेशा ही शुभ-संकल्पवाली, शिव-संकल्पवाली वृत्ति प्रदान कीजिए।

(14) इस शिवसंकल्प सूक्त में मन को ज्योति:-स्वरूप, अमृत, यानी, अविनाशी स्वभाववाला (क्योंकि मुक्ति प्राप्ति से पूर्व स्थिति तक हमारा यह मन अपने अंत:करण के सारे घटकों के साथ, एक शरीर से दूसरे शरीर तक जीवात्मा के साथ चलता रहता है), और कार्य करने का प्रमुख साधन, अर्थात्, जिस मन रूपी साधन के बिना स्वस्थ शरीरस्थ जीवात्मा कुछ भी कर्म नहीं कर सकता **(यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते)**, आदि वैशिष्ट्य प्रदान कर ऋषियों ने हमारे जीवन में उसकी बहुत बड़ी उपयोगिता को सादर स्वीकार किया है।

(15) महर्षि मनु ने मन की शुभ-संकल्पशक्ति का स्मरण करते हुए कहा,

जितना देवी सेवा संस्थान द्वारा आयोजित नि:शुल्क नेत्र शिविर

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट ने दिनांक 7 दिसंबर एवं 10 दिसंबर 2023 को नई दिल्ली में विकसित भारत संकल्प यात्रा अभियान के कैम्प में लोगों को जागरुक करने के लिए भाग लिया।

जितना देवी सेवा संस्थान द्वारा आयोजित नि:शुल्क नेत्र शिविर एवं प्रसाद वितरण

An ISO 9001:2015 Certified Co.
Barbie®
BATH FITTINGS
where
style and value
MEET
BATH FITTINGS - BATH ESSENTIALS- BATH ACCESSORIES - SS SINKS
E-mail : barbiefaucets@gmail.com, Website : www.barbiefaucet.com
Mobile : +91-98106 38910
Wholesalers TownWise & Distributors District wise Required Solicited

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।

मनुस्मृति 2.3

अर्थ : मन के संकल्प से कामनाएं उत्पन्न होती हैं। सभी प्रकार की देवपूजा, संगतिकरण और दान रूपी याज्ञिक क्रियाएं मनोऽनुकूल संकल्पप्रसूत हैं। समाज कल्याणकारी व्रत, यम, धर्म, आदि का क्रियान्वयन इसी मानसिक शुभ-संकल्प या शिव-संकल्प का परिणाम है।

(16) उपर्युक्त सभी विचारों को एक ही मंत्र में स्थान देते हुए वैदिक ऋषियों ने शुद्ध मानसिक शक्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वर से हृदय खोलकर प्रार्थनाएं की हैं,

'कुशल सारथि द्वारा अश्वों को अभीष्ट स्थल पर ले जाने के समान और लगामों के द्वारा अश्वों को नियंत्रित रखने के समान जो मनुष्यों को इधर-उधर ले जाता है; हृदय में प्रतिष्ठित जो अजर (बाल-वृद्धादि अवस्थाओं से रहित) और वेगवान् है, वह मेरा मन, हे ईश्वर! आपके आशीर्वाद से सदा शुभ-संकल्पवाला हो जाए (यजुर्वेद 34.6)।'

बुद्धि - (1) अंत:करण का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है बुद्धि। 'बुध्' अवगमने, 'बुधिर्' बोधने वा इन धतुओं में से निष्पन्न यह शब्द जीवात्मा के ज्ञान का परम साधन है। दर्शनशास्त्र तो साक्षात् ही कहता है कि बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये तीनों एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं,

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्

(न्यायदर्शन 1.1.15)।

(2) सारी सृष्टि अगर एक विशाल पात्र है तो उसमें जगमगाने वाली बहुमूल्य मणि बुद्धि ही है। इसलिए यह बुद्धि त्रिगुणात्मिका, इस विशाल सृष्टि का प्रथम वैकारिक पदार्थ महत्तत्त्व कहलाती है। प्रकृति में विद्यमान अनगिनत रहस्यों को खोजकर, उन्हें उपयोगी बनाने का कार्य बुद्धि का है।

(3) ज्ञान प्राप्ति के लिए एवं गृहीत ज्ञान को परिशोधित करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है क्योंकि बुद्धि द्वारा सत्य और असत्य का निर्णय किया जाता है।

(4) निर्णय करने की क्षमता या मस्तिष्क में बैठी न्यायाधीश्वरी का नाम बुद्धि है।

(5) बुद्धि के निर्णय करने के साधन हैं-प्रमाण, तर्क, पूर्वज्ञान, अनुभव, अनुमान, संभावना, आदि। इन मापदंडों से सभी विषयों को कसकर बुद्धि उन्हें ग्रहण करती अथवा त्याग कर देती है।

(6) बुद्धि सत्त्व-रज-तम रूपी तीनों गुणों के प्रभाव से सदा प्रभावित रहती है। सत्त्वगुण प्रधान बुद्धि द्वारा गृहीत विचार या पदार्थ आत्मकल्याणकारी होते हैं। रज और तमोगुण प्रधान बुद्धि के विचार विविधकर्म-बंधनों में बांधने वाले होते हैं। कभी कभी तामसी बुद्धि या राजसी बुद्धि के कारण 'सीता और श्री राम के द्वारा स्वर्णमृग को ढूंढने के समान' बुद्धिमान् मानव का विनाश भी हो जाता है-**विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**।

(7) बुद्धि के प्रमुख रूप में दो कार्य होते हैं। एक है, गृहीत विचार या विषय के प्रति पर्याप्त विचार-विमर्श करने के पश्चात् संदेह या आशंका व्यक्त करना और दूसरा कार्य है-प्रमाण, तर्क, अनुमान, आदि की कसौटी पर कस कर हितकारी पदार्थ को अपनाने का निर्णय देना। हमारी बुद्धि हमेशा अच्छा निर्णय ले, इसके लिए सात्त्विक, शिष्ट और अनुशासित बुद्धि की आवश्यकता होती है।

(8) इसलिए प्रसिद्ध गायत्री मंत्र की पंक्ति '**धियो यो नः प्रचोदयात्**' (यजुर्वेद 36.3) में दिव्य और परिशुद्ध बुद्धि की कामना की गई है ताकि बुद्धि से अविद्यादि क्लेशों का विनाश हो सके।

(9) बुद्धि को अभ्यास और वैराग्य द्वारा अनुशासित कर उसे अधिक समवेदनानिष्ठ बनाए रखना चाहिए। समवेदना पूर्ण या सहृदयता से आपूर बुद्धि द्वारा प्रेरित मनुष्य स्वयं को समाज के सुख-दु:खों से जुड़कर परोपकारी कार्य करता है, परंतु असंवदेनापूर्ण बुद्धि द्वारा, सहृदयता के अभाव से मनुष्य नरहत्या, प्राणिहिंसा, चोरी, बेईमानी, आदि असामाजिक कार्यों में लिप्त रहता है।

(10) अंत:करण एक अदालत है और उसमें बुद्धि न्यायाधीश्वरी है। मन के द्वारा उठाए गए पक्ष और विपक्ष की समस्त इच्छाओं या विचारों पर आवश्यकता के

अनुरूप, स्थान-काल-पात्र की समीक्षा कर, चित्तरूपी अंत:करण में विद्यमान दलीलों की मदद से बुद्धि अच्छा या बुरा निर्णय सुनाती है। बुद्धि द्वारा आदिष्ट निर्णय को लोक में पुलिस के समान यह मन अपनी इंद्रियों की मदद से क्रियान्वित करता है।

(11) ज्ञान और आचरण में सर्वदा परिशुद्ध होती रहनेवाली बुद्धि के कई स्तर होते हैं, यथा व्यावसायी (स्थिर) बुद्धि, ऋतंभरा (सत्यमात्रा ग्रहण करनेवाली) बुद्धि एवं मेधा (अत्यंत निर्मल, परिशुद्ध) बुद्धि, आदि। **तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु** (अथर्ववेद 6.108.4) मंत्रांश में मेधा बुद्धि की शीघ्रप्राप्ति की कामना की गई है।

(12) दर्शनशास्त्र का एक सिद्धांत यह है कि बुद्धि मन की तरह सूक्ष्म शरीर का अंग बनकर, आत्मा के साथ दूसरे शरीर का ग्रहण करने के लिए जन्म-जन्मांतर तक यात्रा करती रहती है। यह बुद्धि पूर्णत: सूक्ष्म एवं प्राकृतिक तत्त्व होने के कारण अप्राकृतिक तत्त्व जीवात्मा से अंत में तब अलग हो जाती है जब जीवात्मा मुक्तिलोक में प्रवेश करनेवाला होता है।

चित्त - (1) अंत:करण के तृतीय महत्त्वपूर्ण अवयव का नाम चित्त है। यह शब्द 'चित्' संज्ञाने धातु से 'क्त' प्रत्यय करने से बनता है। इसका सामान्य-सा अर्थ है जो भलीभांति स्मृति को और ज्ञान (संचेतना, संज्ञान) को प्राप्त कर चुका होता है वह। तात्पर्य यह हुआ कि जीवन में घट चुकी या प्राप्त की जा चुकी समस्त उपलब्धियों का, ज्ञान का यह एक अक्षय संग्रहालय है।

(2) इस जीवन के भूतकाल में अनुभूत किए जा चुके, वर्तमान में पूरे मनोयोग के साथ अनुभूत किए जा रहे और भविष्य में करने के लिए जो संकल्पित विचार अंत:करण की गहराई को स्पर्श कर चुके होते हैं, उन सभी की स्मृतियां चित्त में सुरक्षित रहती हैं। यथाकाल जो भी अपेक्षित स्मृति है, हम उसे 'मन' की सहायता से चित्त में टटोल सकते हैं; इसमें कोई बाधा नहीं होती है।

(3) कई बार हम देखते हैं कि किसी अति आवश्यक व्यक्ति का नाम या ग्रंथ का नाम या मंत्र का नाम हमें स्मरण नहीं होता है, पर थोड़ी देर में हमारा यह मन जो उस विषय को चित्त से निकाल कर हमें स्मरण करा देता है। तात्पर्य यह हुआ कि चित्त में समस्त विषय होने पर भी सभी का स्मरण मन कर नहीं पाता है, क्योंकि वह अणुपरिमाणवाला है, ईश्वर जैसा विभु (व्यापाक शक्तिमान्) नहीं है। इसलिए उसे समय लगता है। परंतु जिन विषयों की बारबार आवृत्ति या व्यवहार मन करता है, केवल उन्हीं का तत्काल स्मरण मन की सहायता से चित्त हमें करा पाता है।

(4) अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारे स्वभाव और प्रतिदिन कार्य करने के अभ्यास से उत्पन्न संस्कार के संग्रहालय को हम चित्त कहते हैं। मन द्वारा उठाए गए विचारों में से जो कुछ विचार पूर्वोक्त बुद्धि द्वारा गृहीत होकर कार्य रूप में परिणत होते हैं और लंबे समय उन पर कार्य करते रहने से चित्त में जो कुछ उनका संस्कार बद्धमूल होता जाता है, वही संस्कार सदा सक्रिय रहते हैं। चित्त में पड़े उन अच्छे या बुरे संस्कारों को हटाना कष्टकर होता है।

(5) चित्त हमारे सभी पाप-पुण्यों का भंडार है। जो कुछ भी अच्छा या बुरा संस्कार इच्छा के रूप में प्रकट होकर, बुद्धि की लक्ष्मण रेखा को पारकर चित्त में डेरा डाल लेता है, उसके क्रियान्वयन से हमारा कर्माशय (कर्मों का संग्रह) बनता जाता है।

(6) मस्तिष्क में स्थान-काल-परिस्थिति के कारण सकारात्मक और नकारात्मक विचार के आने से कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ता, जब तक कि आप उसे बुद्धि द्वारा अनुमोदित कराकर, अपने चित्त में अवस्थापित कर नहीं लेते। जब कोई इच्छा या विचार बुद्धि द्वारा अनुमोदित होकर चित्त में आ जाता है तो वह आदत या संस्कार के रूप में अपनी जड़ें जमा लेता है। वह समझ जीवन भर उसी प्रकार स्वभाव और संस्कार को जन्म देती है जब तक एक योगाभ्यासी पुरुष विवेक और वैराग्य से अनुशासित अपने मन द्वारा उसे जड़-मूल उखाड़ कर न फेंक दे।

हमारे व्यक्तित्व में वर्षों से छिपे पड़े ऐसे असंख्य कुसंस्कार हमें कु-प्रवृत्तियों में धकेलते रहते हैं।

(7) हमारा चित्त जड़ होने से उसमें संगृहीत संस्कार हमारे चेतन, अल्पज्ञ जीवात्मा में हमेशा के लिए स्थापित हो जाते हैं।

(8) हमारे इस जड़ चित्त के जरिए चेतन आत्मा में जन्म-जन्मांतरों के कु-संस्कार पड़े रहते हैं। इनका परिशोधन कर हमेशा के लिए इन्हें हटा देने का कार्य हमारा यही यौगिक (योगमार्ग में अभ्यस्त) मन ही कर सकता है। आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा मनोमय कोश को परिशोधित कर, अभ्यास तथा वैराग्य के सतत अनुष्ठान द्वारा विद्या-प्रेरित जीवनशैली अपनाने से यह संभव हो पाता है।

इसीलिए तो योगदर्शन कहता है- **योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः** (योगदर्शन 1.1), अर्थात्, चित्त की वृत्तियों या दुर्विचारों, दोषों का निवारण योग के द्वारा ही संभव है गीता में कृष्ण भी कहते हैं, **तस्माद्योगी भवाऽर्जुन** (गीता 6.46), 'इसलिए हे अर्जुन! तुम योगी बनो।'

अहंकार - (1) अंत:करण का चौथा और बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवयव है अहंकार। अहम्=मैं, कार=पन, भावना, अर्थात्, 'मैं'-पन या 'मैं, मेरे' की भावना का नाम अहंकार है। आत्मा की सत्ता की अनुभूति करानेवाला अहंकार है। आत्मा एक स्वतंत्र सत्ता है, इसलिए इसके अस्तित्व की अनुभूति, इसके सुख-दु:खादि अनुभव करने की अनुभूति अहंकार रूपी अंत:करण-वृत्ति से प्राप्त होती है।

(2) अहंकार की सहायता से जीवात्मा को अपने होनेपन, कर्तापन, भोक्तापन, जड़ जगत् का ज्ञान तथा परम चेतन परमात्मा की अनुभूति हो पाती है।

(3) इस अहंकार का साक्षात् ज्ञान हमें निम्नलिखित तीन सोपानों द्वारा हो पाता है,

(i) **अहमिदम्** (मैं राम, श्याम, महिला, पुरुष, विद्वान्, इंजीनियर, डॉक्टर, आदि में से कुछ एक हूँ। यह मेरी पहचान है, यह मेरा अहंकार, यानी, मैंपन है।)

(ii) **ममेदम्** (यह सब मेरा है। ये सभी सुख-दु:ख मेरे अनुभव के विषय हैं, अर्थात्, मैं इनका अनुभव कर पा रहा हूँ।)

(iii) **इदं न मम** (यह मेरा नहीं है, तो फिर जड़ प्रकृति का या चेतन परमात्मा का हो सकता है। मेरे से इस पदार्थ का दूर दूर तक संबंध नहीं है। यहां भी मैंपन [अहंकार] का अन्य पदार्थों से अमिश्रित होने का एक विशिष्ट अनुभव है।)

(4) हमारी हर इच्छा का संबंध हमारे अहंकार से है। हमारी विद्यमान स्थिति के अनुसार हमारी इच्छाएं मन के धरातल पर उठती हैं। एक अमीर व्यक्ति की इच्छाएं उसी के स्तर की होंगी और एक गरीब मजदूर की इच्छाएं उसी के स्तर की होंगी। मतलब हमारी इच्छाओं का हमारे अहंकार से गहरा नाता है।

यदि आपकी आहंकारिक समझ आपको पुरुष बताती है तो आपका आकर्षण स्त्रियों के प्रति होगा। आपकी इच्छाएं पुरुष-सुलभ विचारों की होंगी, स्त्री-मिलन की होंगी। इसमें आपके पुरुष-सुलभ शारीरिक अवयव, आपके अहंकार को और अधिक पुष्ट करते जाएंगे। यदि आपकी आहंकारिक समझ आपको स्त्री बताती है तो आपका आकर्षण पुरुषों के प्रति होगा, आपकी इच्छाएं स्त्री-सुलभ होंगी, आदि।

यदि आप स्वयं को आत्मा मानें और हर स्त्री को या पुरुष को दूसरी आत्मा की दृष्टि से देखें तो आपकी इच्छाएं एक अल्पज्ञ जीवात्मा के अनुरूप मर्यादित होंगी। एक अणु परिमाण वाले जीवात्मा के सामर्थ्यानुसार उसकी इच्छाएं एकदेशी, सीमित सामर्थ्य वाली, कर्म-पफलानुबंधी, आदि विचार परक होंगी।

बस, अब आप एक साधक बन जाइए और पूर्ण समझ के साथ हमेशा अपनी आहंकारिक स्थिति को बदलते रहने की चेष्टा करें। निश्चित ही जीवन सुधर जाएगा।

(5) यदि हम आत्मज्ञानी हैं और जगत् को सर्वात्मभाव से देखते हैं तो हमारी इच्छाएं सर्वजन कल्याणकारी होकर स्फुटित होंगी और हमारा व्यक्तित्व ऊंचा होता जाएगा। हमारे अहंकार में सदा नातिमानिता (अपने को अधिक नहीं मानने) की स्थिति दिखाई देगी।

'जगन्नियामक ईश्वर की इस सृष्टि में मैं तो एक साधन मात्र हूँ', इस निरभिमानिता या शुद्ध-सात्त्विक अहंकार से सदा जुड़े रहना चाहिए तभी जाकर हमारा कल्याण हो सकेगा।

वैदिक समाज व्यवस्था एवं विश्वबन्धुत्व

डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री - एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
श्री गुरुनानक देव खालसा महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संसार आज ऐसी सामाजिक व्यवस्था की खोज में हैं, जिसमें उसे शान्ति मिल सके। गरीबी-अमीरी का संघर्ष न हो और सभी मानवमात्र समान-भाव से उन्नति करते हुए आनन्दमय जीवन बिता सकें।

वस्तुतः वैदिक समाज-व्यवस्था ऐसी सुन्दर व्यवस्था है, जिसके द्वारा हम सब सुखी सम्पन्न और कल्याणकारी मार्ग पर बढ़ सकते हैं।

उन्नति के लिए सब लोगों में असम्बाध अर्थात् द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिए। किसी भी प्रकार का झगड़ा नहीं होना चाहिए। परस्पर विचार विषमता के कारण झगड़े उत्पन्न होते हैं। जन्म से एक उच्च और दूसरा हीन है, इस प्रकार की विषमता ऊँचाई- नींचाई का क्षुद्रभाव जहाँ होगा वहाँ अवश्य झगड़ा होगा। समता से झगड़े मिट जाते हैं। विषमता से उत्पन्न होते हैं।

वेदों की सर्वप्रथम विशेषता यही है कि इसमें प्राणीमात्र के कल्याण की भावना निहित है। वेद में मानवमात्र को **"मनुर्भव"**[१] का पाठ पढ़ाया है- हे मनुष्य! तुम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनो। जीवन में मानवीयता की पहचान करो। दुनिया में जितने श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव व पदार्थ हैं, उनको जीवन में धारण करो। एक-एक व्यक्ति के निर्माण से ही समाज बनता है। उत्तम समाज से ही उत्तम राष्ट्र बनता है। हम न केवल अपने आस-पड़ौस, समाज और राष्ट्र में ही शान्ति की कामना करें, अपितु विश्वसमाज में सबके कल्याण की कामना करें। इसलिए यजुर्वेद में कहा है-**"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"**[२]- हम एक-दूसरे को मित्र की ष्टि से देखते हैं। सब दिशा-उपदिशाओं में प्राणी मेरे मित्र बन जायें। **'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'**[३] - सबके प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार हो। हम किसी के भी साथ द्वेष, छलकपट, हिंसा इत्यादि कुटिल भावनाओं से युक्त आचरण न करें। **'मा नो द्विक्षत कश्चन'**[४]- हम एक-दूसरे की सहायता तथा सब ओर से परस्पर रक्षा की भावना स्थापित करें। **'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः'**[५] - वैदिक समाजिक-व्यवस्था में परस्पर समानता, समीपता, सामिंजस्य सौहार्दपूर्ण वातावरण था। मानवमात्र में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। सब परस्पर आपसी भाईचारे के समान परस्पर व्यवहार किया करते थे। शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति का अधिकार प्रत्येक को था। इस विषय में ;ग्वेद का कथन द्रष्टव्य है-

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास
उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।[६]
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।[७]

साथ ही मानवमात्र को सहृदयता, समनस्कता और परस्पर द्वेष न करने का पाठ पढ़ाकर एक-दूसरे से उसी प्रकार प्रेम करने का पवित्र उपदेश है, जैसे गौ अपने शिशु से प्रेम करती है।

सहृ दय सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्स जातमिवाघ्न्या॥[८]

इसी आधार पर मनुष्यों के प्रति वेद का निर्देश है कि शूद्र और आर्य सबका प्रिय (कल्याण) देखें-**प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये।**[९] यहाँ पर आर्य शब्द से किसी जातिविशेष, देशविशेष या स्थानविशेष का वर्णन नहीं है। वेद में मनुष्यमात्र के केवल दो भेद किये गये हैं-आर्य और दस्यु-**विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो**[१०]-

आर्य-श्रेष्ठ, सदाचारी। दस्यु वह है, जो दूसरों के कर्मों में बाधा पहुंचाता है, उन्हें नष्ट करता है, क्षीण करता है। दस्यु उस व्यक्ति की संज्ञा है जो कर्महीन, आलसी और मानवीय गुणों से रहित हो-**अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरस्यव्रतो अमानुषः।**[११]

इस प्रकार वैदिक विचारधारा में आकर जाति, वर्ण, ऊंच-नीच, देश आदि के भेद समाप्त हो जाते हैं। मनुष्यमात्र की रक्षा केवल इसलिए की जानी चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य है। यही व्यापक विश्वपरिवार की भावना है। यह व्यापक भावना न तो जातिभेद के आधार पर है और न वंश-परम्परा की सीमित परिधि के भीतर।

वेद में किसी जातिविशेष, धर्मविशेष या मतविशेष को संबोधित नहीं किया गया है, अपितु सामान्य मनुष्यमात्र यहां संबोधित है-**शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः,**[१२]। **"उद्यानं ते पुरुष नावयानम्"**[१३] हे मनुष्य! तुम जीवन में सर्वाङ्गीण उन्नति करने के बारे में सदा चिन्तन, मनन करते रहना। कभी अवनति को प्राप्त न होना। वेदों में समस्त मानव समाज को मन-वचन-कर्म से संगठित होकर रहने का उच्चतम व्यावहारिक उपदेश दिया गया है-

संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।[१४]

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः।[१५]

वेद की अधिकांश प्रार्थनाओं में बहुवचन के प्रयोग से ही यह बात स्पष्ट है कि वेद समष्टिगत विचारधारा को लेकर चलता है, जैसे प्रसिद्ध गायत्री मंत्र में हम सबकी बुद्धियों को प्रेरित करने की प्रार्थना है-**धियो यो नः प्रचोदयात्।**[१६] **'यद् भद्रं तन्न आसुव'**[१७] **'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्०'।**[१८]

इस प्रकार किसी भी समाज की उन्नति के लिए यह समष्टि भावना कितनी उपयोगी है, हम सब इस बात से भलीभांति परिचित हो सकते हैं।

समस्त मानवजाति में परस्पर 'भद्र-भावना (कल्याण) होना चाहिए। विशुद्ध कर्त्तव्य बुद्धि से काम करना वास्तविक कल्याण भावना है-**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा।**[१९] **आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।**[२०]

वैदिक समाज व्यवस्था में आशावाद, पुरुषार्थ, कर्म करने की सतत प्रेरणा के दिग्दर्शन होते हैं, निराशावाद, अकर्मण्यता, भाग्याधीन होकर बैठे रहना, कर्म न करने की भावना इत्यादि के लिए कोई स्थान नहीं। समस्त वैदिक साहित्य आशावाद के ओजपूर्ण भावों से परिपूर्ण है-**तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्०**[२१] मंत्र में सौ वर्ष तक अदीन होकर जीने की प्रार्थना की गई है। वैदिक साहित्य-सागर में अन्तः प्रवेश करते ही आशावादी तेजस्वी जीवन का उल्लास दिखलाई पड़ता है-भाई-भाई द्वेष की भावना न रखें, बहिन-बहिन में द्वेष की भावना न हो, सम्यक् प्रीति, प्रसन्नता, उल्लास, उमंग, तेजस्विता, कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, दया उदारता, करुणा, यम, नियमों का पालन आदि गुणों से युक्त होकर मंगलदायक रीति से एक-दूसरे के प्रति मधुर व्यवहार तथा मधुर वाणी का प्रयोग समाज व्यवस्था में सुख-शान्ति, विश्वबंधुत्व की भावना को दर्शाती है-

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्... वाचं वदत भद्रया।[२२]

संपूर्ण मानव समाज में कोई निर्धन न हो, भूखा न हो, सबको समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार हो, इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा दी गई है--**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'**।[२३] समस्त पदार्थो को त्यागपूर्वक भोगने की बात कही गयी है, जो व्यक्ति पदार्थो का उपयोग व उपभोग बिना बांटकर केवल अकेले ही भोग करने की भावना रखता है, ऐसा व्यक्ति केवल पाप का भोग करता है। **'केवलाघो भवति केवलादी'**[२४]। उस दैवी शक्ति ने समस्त पदार्थ प्रत्येक प्राणीमात्र के लिए प्रदान किये हैं, वहीं शक्ति चराचर में व्याप्त है--**'ईशावास्यमिदं सर्वम्'**[२५]। एक व्यक्ति समस्त पदार्थो का भोग करें तथा दूसरे को भूखा सोना पड़े तो क्या सुन्दर समाज की कल्पना की जा सकती है, इसी के लिए इष्ट और आपूर्त कर्मों का विधान वेद में बतलाते हैं, जैसे विद्यादान, विद्यालय खुलवाना, औषधि, वनस्पतियों का संरक्षण, संवर्धन, यह

उदार भावना ही उन्नत समाज का निर्माण कर रही है। **'उद्बुद्ध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च'।**[२६]

वैदिक सामाजिक-व्यवस्था में समाज की कल्पना एक सुगन्धित शरीरधारी पुरुष के रूप में की गई है, जिस प्रकार शरीर के सभी अंग उत्कृष्ट हैं। कोई अंग किसी से कम मूल्य वाला नहीं है, ऐसे ही समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन वर्णों में न कोई ऊंचा है, न कोई नीचा। शूद्र वर्ण निकृष्ट नहीं हेय नहीं, अपितु संपूर्ण समाज का आधार है। वह अपने शिल्प द्वारा, श्रम के द्वारा आवश्यक साधनों, उपकरणों को समाज के सभी वर्गों के लिए उपलब्ध कराता है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यवैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥[२७]

इस प्रकार वैदिक समाज वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण, कर्म है, जाति नहीं। सबकी समान आवश्यकता है, सबका महत्त्व है, ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं। कोई गर्हित नहीं, कोई अस्पृश्य नहीं।

परमेश्वर से चारों वर्णों में दीप्ति प्रकाशमान होने की प्रार्थना की गई है-

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥[२८]

समाज में सभी कार्य करने वालों का समान महत्त्व है, सबका एक जैसा सम्मान है। इसीलिए प्रस्तुत मन्त्र में बढ़ई, रथनिर्माता, कुम्हार, लोहार, निषाद (मछुआरे) शिकारी आदि सबको नमस्कार किया गया है--

'नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्माकाभ्यश्च वो नमः।'[२९]

वस्तुतः सबकी समान समृद्धि से ही पूर्ण समाज, राष्ट्र तथा मानवमात्र की समृद्धि सम्भव है। समाज के सभी अंगों के स्वस्थ रहने पर ही समाज उचित दिशा में वाञ्छित प्रगति कर सकता है।

वैदिक समाज व्यवस्था में पुरुष के समान नारी को भी उत्कृष्ट स्थान दिया गया है। वह अधिकारी है, अदिति है, अखण्ड शक्ति है। मैं स्वयं राष्ट्र शक्ति हूँ, वह जिसे चाहे उसे प्रतिष्ठित कर देती है-

अहमेव स्वयमिदं वदामि......यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि।[३०]

उसे घर की साम्राज्ञी बतलाया गया है--**साम्राज्ञी श्वशुरे भव**[३१] पति-पत्नी में परस्पर अत्यन्त दृढ़ प्रीति व अनुराग बना रहे-**चक्रवाकेव दम्पती**[३२]। पुत्र-पुत्रियाँ वीर हों, तेजस्वी, वर्चस्वी यशस्वी हों-**मम पुत्राः शत्रुहणः**[३३] गृहस्थ जीवन कल्याणकारी हों। सम्पूर्ण आयु नीरोग स्वस्थ बनकर पुत्र-पौत्रों के साथ आनन्द से परिपूर्ण रहें। **इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुयश्नुतम्**[३४]।

समाज के सभी व्यक्ति परिश्रमी हों, आलसी व प्रमादी न हों, कर्मशील व ज्ञानशील दोनों का समन्वय जीवन में करें-**कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः**[३५]। **कुर्वन्नेवेह कर्माणि०''**। अथर्ववेद के ३०वें सूक्त के प्ंचिम मन्त्र में वैदिक आदर्श समाज व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों का विशद रूप से वर्णन उपलब्ध होता है।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः सं मनसस्कृणोमि॥

मंत्र का एक-एक शब्द बहुत ही गंभीर व रहस्यात्मक बातों का दिग्दर्शन कराता है। सर्वप्रथम संकेत है- **'ज्यायस्वन्तः'**- समाज के सभी मानवमात्र के मनों में एक-दूसरे के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना होनी चाहिए-**आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।** कभी कोई भी व्यक्ति अपने को हीन भावना से ग्रस्त न समझे। समाज व्यवस्था में सबको प्रगति, शिक्षा, स्वास्थ्य, जीविकोपार्जन, निवास, खान-पान आदि मूलभूत सुविधाओं के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए।

२. चित्तिनः:- वैदिक समाज-व्यवस्था में ज्ञान प्राप्ति के अवसर सबको सुलभ होने चाहिए। सभी लोग ज्ञानवान् हों, कर्मशील हों-**'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** की भावना से

ओतप्रोत हों।

३. मा वियौष्ट–इस समाज व्यवस्था में सब लोग प्रीतिपूर्वक आपस में बरतें। कभी कोई अपने आपको हीन भावना से ग्रस्त न समझे। ऊंच–नींच की भावना को समाप्त करें। समाज, राष्ट्र, परिवार सबके कर्तव्यपूर्ण अधिकारों का संरक्षण हों।

४. संराधयन्तः–एक–दूसरे की उन्नति में ही सबका कल्याण सम्भव है। एक व्रत, एक संकल्प, एक मानवजाति, व्यष्टि उन्नति से ही समष्टि का कल्याण, हित, सम्भव है।

५. सधुरा–परिवार, समाज या किसी भी राष्ट्र की उन्नति में सबका सहयोग, कर्त्तव्य–भावना, निष्ठा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। जैसे किसी पहिये में अनेक अरे मिलकर गतिमान् हो उठते हैं, ऐसे ही समाज में सभी की सक्रियता, सहयोग, परिश्रम, उद्यमशीलता से ही सामाजिकोन्नति सम्भव है।

६. चरन्तः– गतिशील जीवन जीने की कामना प्रत्येक व्यक्ति में होना चाहिए। गति ही जीवन का आधार है। सभ्य समाज का निर्माण सबकी प्रगति में ही छिपा है।

७. अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्तः–समाज में सभी के प्रति मधुरता का व्यवहार। आपसी भाईचारा, परस्पर की एकता, अखंडता में ही सबका कल्याण निहित है। दंगा, फसाद, लड़ाई, व्यर्थ वाद–विवाद, इत्यादि सब कुत्सित वाणी के प्रयोग करने के कारण ही दिखाई देते हैं। अतः माधुर्यमय जीवन की कामना इस मंत्राश में छिपी है।

८. एत–समस्त मानवजाति की परस्पर एकता। आज भी हमारे मानव समाज में साम्प्रदायिक, जातीय–संघर्ष, असहिष्णुता, स्वार्थपरता, कर्तव्य की उपेक्षा, प्रान्तीय एवं क्षेत्रिय विद्वेष, भाषा सम्बन्धी समस्या, राष्ट्रिय भावना का अभाव, छल, कपट, झूठ, बेईमानी, जैसी कुरीतियां व्याप्त हैं। इनका समूल उन्मूलन परस्पर की एकता से ही सम्भव है। हम दूसरे के निकट आने का प्रयत्न करें, न कि आपसी वादविवादों में ही उलझते रहें। वेद का मानवमात्र को संदेश प्रेरणा है। ऐ दुनिया के लोगो! परस्पर क्षुद्र भावनाओं को त्यागकर एकता. के बंधन में बंधने का प्रयत्न करो।

९. सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि–सबका लक्ष्य एक, परस्पर मिल–जुलकर कर्तव्य कर्म करने की भावना सबकी समान हो, यही भद्र भावना ऋग्वेद के संगठन सूक्त में दिखलाई देती है।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।[३७]

उपरोक्त कतिपय सिद्धान्तों की चर्चा अथर्ववेद के इस मन्त्र में स्पष्टता से दिखलाई देती है। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है, तथापि वेदों का यह संदेश कल्याण के लिए उपदिष्ट है। यदि हम इस पर चलने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चितरूप से सम्पूर्ण मानव समाज एकता अखण्डता के सिद्धान्तों में बंधकर प्राणीमात्र का कल्याण कर सकता है।

वैदिक–समाज व्यवस्था में सदा से ही **सर्वभूत हिते रताः, वसुधैव कुटुम्बकम्,** सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय इत्यादि का पवित्र संदेश छिपा है। हमारे ऋषि महर्षियों ने राष्ट्रीय दृष्टि (Nationalist view) को तुच्छ समझते हुए मानवमात्र को भाई–बन्धु के रूप में ही पहचाना।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या[३८]।

नमो मात्रे पृथिव्यै, 'मनुर्भव' इत्यादि मन्त्रोपदेश और निर्देश हमारी संस्कृति को संसार के उच्चतम शिखर पर ले जाते हैं, तभी महर्षि का यह उद्घोष सार्थक प्रतीत होता है––**सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।**[३९]

वेदों में समस्त प्राणीमात्र को मित्र स्नेह की दृष्टि से परस्पर व्यवहार आदर सम्मान देने की बात कही गई है। हम एक–दूसरे के प्रति परस्पर भाईचारे की भावना बनाये रखें। कभी किसी के प्रति वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष की भावना न रखें।[४०] हम मानवसमाज में सङ्गठित रहते हुए एक–दूसरे के संरक्षण संवर्द्धन की बात सोचें।[४१] ये सभी विचार विश्वबन्धुत्व विश्वप्रेम की भावना को प्रकट करते हैं। **शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु** जैसे विश्वशान्ति के भाव वेदों में भरे पड़े हैं।[४२]

वेदों का अद्वितीय वैशिष्ट्य और महत्ता यह भी है कि इसकी प्रार्थनाएँ प्रायः बहुवचन में होती हैं। ये प्रार्थनाएँ केवल हिन्दूजाति के लिए न होकर समष्टि भावना से ओतप्रोत प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारिणी हैं। सद्बुद्धि की याचना सभी करते हैं, तभी कहा गया है- **"धियो यो नः प्रचोदयात्"**[४३] हम सबकी बुद्धि सत्कार्यों में सदा लगी रहें। हम अपनी धी बुद्धि से कभी कोई गलत कार्य न कर पायें। सभी के जीवन में भद्र का प्रवेश हो। कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव तथा पदार्थ सबके लिए हो - **"यद् भद्रं तन्न आसुव।"**[४४] हम सदा अच्छे मार्ग पर चलते रहें - **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्।**[४५] समस्त प्रार्थनाएँ प्राणीमात्र की उन्नति समष्टि भावना को द्योतित करती हैं। समस्त वैदिक साहित्य आशावाद के ओजपूर्ण भावों से परिपूर्ण है। स्त्रीजाति के प्रति भी वेद में उदात्त विचार भावनाएँ निहित हैं।

माता का प्रथम गुण वेद में यही बतलाया है कि उसकी दृष्टि सदा प्रेमपूर्ण बनी रहे। उसकी आँखों में कभी क्रूरता न हो। वह सदा पुष्प के समान खिली हुई और प्रसन्न मन वाली हो।[४६] वह कोमलांगी क्रोध से शून्य, सदा प्रसन्नता में विचरने वाली, बोलने वाली, गृहस्थ व्रतों का पालन करने वाली हो।[४७] उसे उत्तम मंगल करने वाली, पारिवारिकजनों को दुःखों से पार ले जाने वाली सास-ससुर को आनन्द प्रदान करने वाली कहा गया है।[४८] वीर पुत्र-पुत्रियों को पैदा करने वाली उसे कहा गया है। तभी वह गर्वपूर्वक घोषणा करती है- मेरे पुत्र शत्रुओं का संहार करने वाले हों। मेरी पुत्री अत्यन्त तेजस्विनी हो। मैं स्वयं विजयशालिनी हूँ। मेरे पति में भी सर्वश्रेष्ठ शत्रु विजय सम्बन्धी यश है।

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥[५०]

विचारों की शक्ति महान् है, अतः स्त्रियों को अपना मनोबल खूब बढ़ाना चाहिए। उसे सदा उत्तम मनवाली बनना चाहिए। अपवित्र तथा संकीर्णमना न होकर उदारमना बनना चाहिए। सब ओर से हमारे मन में उत्तम विचार और भावनाएँ ही आएँ तत्कालीन समाज व्यवस्था में सभी को एक-दूसरे के प्रति क्या कर्त्तव्य होने चाहिए। इस बात पर भी विस्तार से वर्णन मिलता है। पुत्र-पुत्रियों का माता-पिता के प्रति क्या कर्त्तव्य है। सभी बालक-बालिकाएँ अपने माता-पिता के उद्देश्यों के अनुकूल चलने वाले हों। माता-पिता के प्रति समान मन वाले हों। भाई-भाई से द्वेष न करें, भाई-भाई आपस में न लड़ें। भाई और बहनें भी आपस में न लड़ें। बहन-बहन भी ईर्ष्या-द्वेष न करें। घर के सभी छोटे-बड़े सदस्य प्रेम, माधुर्य, उदारता, परस्पर सहिष्णुता आदि गुणों से युक्त होकर एक चालवाले बनें। सब परस्पर एक-दूसरे के अनुकूल एकचित्त और एक व्रत वाले बनें। सबका उद्देश्य एक हो। एक-दूसरे के साथ मधुरभाषण करें। इस प्रकार वैदिक गृहस्थाश्रम को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बताया है।

सारांश में हम कह सकते हैं---वैदिक समाज-व्यवस्थाएं उज्ज्वलतम प्रेरणा देनी वाली हैं। इसमें सर्वत्र सद्गुणों एवं सत्कर्मों का समन्वय दिखाई देता है। वस्तुतः यह व्यवस्था हमारी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, आचार, मर्यादाओं आदि का आधार है, जिसके बिना हम खड़े नहीं हो सकते। आज पाश्चात्य देश अत्यधिक भौतिक उन्नति करके भी अशान्ति और असुरक्षा का अनुभव कर रहे हैं। यदि भारत को इस अशांति से बचाना है तो उसे अपने स्वरूप को बनाये रखना होगा तथा विश्व-समुदाय को बचाना है तो वैदिक-समाज के आदर्शों का अनुसरण करके सामाजिक संतुलन स्थापित करना होगा। सबके अन्दर शिक्षा, परिश्रम, कर्तव्य-भावना, बुद्धि की प्रतिष्ठा करनी होगी। नारी का यथेष्ट सम्मान करना होगा। जातिवाद, छुआछूत, परस्पर की घृणा, द्वेष, अशान्ति, ऊंच-नींच की भावना इत्यादि अनेक कुरीतियां छोड़कर शोषित वर्ग के साथ समानता का व्यवहार करना होगा। विश्व-समाज व्यवस्था की पूर्ण झलक इस मंत्र में भी देखी जा सकती है-**आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्०**[५५]।

इस प्रकार यह वैदिक, सामाजिक व्यवस्था मानवमात्र को आपस में जोड़ने का काम करती है, न कि तोड़ने का। यह बिखरे हुओं को एक करती है। नैराश्यमय जीवन में आशावाद का संचरण करती है। मानवमात्र का सर्वाङ्गीण विकास करने में सक्षम व समर्थ है। व्यक्तिनिर्माण से समाज का निर्माण, सभ्य समाज से ही राष्ट्रोन्नति सम्भव है। इस निधि को किसी वर्गविशेष से या किसी जातिविशेष से नहीं जोड़ा जा सकता। यह मानवमात्र की सम्पत्ति है। इसे उसी परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न होना चाहिए।

सन्दर्भग्रन्थ–

१. ऋग्वेद १०.५३.६
२. यजुर्वेद ३६.१८
३. अथर्व० १९.१५.६
४. अथर्व० १२.१.२४
५. ऋग्वेद ६.७५.१४
६. ऋग्वेद ५.५६.६
७. ऋग्वेद ५.६०.५
८. अथर्व० ३.३०.१
९. अथर्व० १९.६२.१
१०. ऋग्वेद १.५८.८
११. ऋ० १०.२२.८
१२. यजु० ११.५
१३. अथर्व० ८.१.६
१४. ऋग्वेद १०.१९१.२
१५. अथर्व० ३.३०.६
१६. यजु० ३६.३
१७. यजु० ३०.३
१८. यजु० ४०.६।
१९. यजु० २५.२
२०. यजु० २५.१४
२१. यजु० ३६.२४
२२. अथर्व० ३.३०.३
२३. यजु० ४०.१
२४. ऋग्वेद १०.११७.६
२५. यजु० ४०.१
२६. यजु० १५.५४
२७. ऋग्वेद १०.९०.१२
२८. यजु० १८.४८
२९. यजु० १६.२७
३०. ऋ० १०.१२५.५
३१. अथर्व० १४.१.२२
३२. अथर्व० १४.२.६४
३३. ऋ० १०.१५९.३
३४. ऋ० १०.८५.४२
३५. अथर्व० ७.५२.८
३६. यजु० ४.२
३७. ऋ० १०.१९१.२
३८. अथर्व० १२.१.१
३९. यजु० ....
४०. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। – यजु० ३६.१८
४१. पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। – ऋ० ६.७५.१४
४२. ऋग्० ७.३५.८
४३. यजु० ३६.३
४४. यजु० ३०.३
४५. यजु० ४०.५६
४६. अघोरचक्षुः.... सुशेवा। – अथर्व० १४.२.१७
४७. मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता। – अथर्व० ३.२५.४
४८. सुमंगली प्रतरणी गृह्णाम... । – अथर्व० १४.२.२६
४९. वीरसू.. । – अथर्व० १४.२.१७
५०. ऋग्० १०.५९.३
५१. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । – यजु० २५.१४
५२. अनुव्रतः पितुः पुत्रो। – अथर्व० ३.३०.१
५३. सं गच्छध्वं सं वदध्वम्। – ऋग्० १०.१९१.२
५४. मा भ्राता भ्रातरं...... वाचं वदत भद्रया। – अथर्व० ३.३०.३
५५. यजु० २२.२२

आर्य के गुण

रचना आहूजा-प्रधाना
प्रान्तीय आर्य महिला सभा-दिल्ली राज्य

आर्य शब्द मूल रूप से '**ऋगतौ**' धातु से विकसित हुआ है-जिसका अर्थ है-निरन्तर गतिशील रहना। अर्थात् जो शुभ गुणों की प्राप्ति में निरन्तर गतिशील रहता हुआ ईश्वर के सानिध्य को प्राप्त करता है-वही वास्तव में आर्य ईश्वर पुत्र है। आर्य की परिभाषा महर्षि मनु ने, महाभारत में भी दी है। स्वामी दयानन्द के अनुसार। **"जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्य विद्यादि गुणयुक्त और आर्यवर्त्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं उनको आर्य कहते हैं।"** (आर्योउद्देश्य रत्न माला)

महर्षि मनु के अनुसार

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रिय।
दाता दयालु नम्रश्च स्यादु आर्योभिः अष्टभिः गुणः॥

जिस व्यक्ति में ये आठ गुण होते हैं वो आर्य कहलाता है।

1. **ज्ञानी** - ज्ञानी व समझदार व्यक्ति को आर्य कहते हैं। कौरव और पांडवों के दो दल बन चुके थे। एक दल विनाश करने में विश्वास रखता है वो दूसरा विनाश रोकने में। एक छल कपट कर रहा है तो दूसरा धैर्य पूर्वक उसका सामना कर रहा है। इसमें पांडवों के दल को आर्य कहा जायेगा और कौरवों के दल को अनार्य। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम को आर्य कहा जाता है क्योंकि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ज्ञान पूर्वक समझदारी से व्यतीत किया वैसे तो मन्दोदरी भी अपने पति रावण को आर्य कहती है परन्तु अगर ये जान पाती कि आर्य का एक गुण समझदारी भी है, तो रावण को आर्य न कहती।

2. **तुष्ट** - तुष्ट अर्थात् संतुष्ट-अर्थात् अपने पुरुषार्थ के अनुसार उसे जो कुछ भी प्राप्त होता है उसमें संतुष्ट रहता है। अपनी प्राप्ति से असंतुष्ट रहना आर्य का गुण नहीं है। कहा भी है-

गो धन, गज धन, बाज धन और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन सब धन धूरी समान॥

थोड़े में भी अपने आप को शांत रखना आर्यत्व का गुण है क्योंकि इच्छाऐं तो व्यक्ति की समाप्त नहीं होती। जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्नि और अधिक प्रज्जवलित होती हे, उसी प्रकार एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है। महर्षि भरी हरि के अनुसार-

भोगा न भुक्ता वयंमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा। वयमेव जीर्णा।

3. **दान्त** - दान्त का तात्पर्य है-दमनशीलता-इस दमनशीलता का अर्थ कई बार लोग गलत करते हैं कि - ज़बरदस्ती दबाना। जैसे गेंद को जितना दबाकर रखते हैं उतना ही वह ऊपर उछलती है। उसी प्रकार यदि हम अपनी इन्द्रियों को ज़बरदस्ती दबायेंगे तो अवसर पाते ही उछलने लगती है। इन्द्रियों को हमें ज्ञान पूर्वक दबाना है। आँख, कान, नाक, जिव्हा, त्वचा इन पर संयम होना ही आर्य का गुण है।

4. **सत्यवादी** - सत्य भाषण करना आर्य का अहम् गुण है। कहा भी है कि -

सत्यं ब्रूयात् - प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियं।
नासत्यं च प्रियं ब्रूयात्, एषः धर्मः सनातनः।

जिसमें सभ्यता नहीं-छल कपट है। बाहर कुछ अंदर कुछ है तो ऐसे व्यक्ति को आर्य नहीं कह सकते। सत्यवादी व्यक्ति का हर जगह सम्मान होता है। हमारे आर्यो की इतनी मान्यता थी कि कोर्ट में जज के समक्ष अगर कोई आर्य जाकर गवाही देता था तो उसकी गवाही मान्य होती थी। किसी और ग्वाही की आवश्यकता ही नहीं होती थी। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के नियमों में सत्य पर बहुत

ज़ोर दिया। ईसाईयों के तीव्र खण्डन से रूष्ट होकर जब बरेली के कलेक्टर ने लाला लक्ष्मीनारायण के द्वारा स्वामी जी को कहलवाया कि वे अपने व्याख्यानों में सख्ती न बरतें तो स्वामी जी ने उसकी चेतावनी की अवहेलना करते हुए गर्जनापूर्वक दूसरे दिन के व्याख्यान में कहा "हमारे सत्यकथन से कोई बड़ा अधिकारी (कलेक्टर या कमिश्नर) रुष्ट हो तो हमें इसकी तनिक भी परवाह नहीं है-हम तो सत्य ही कहेंगे। अगर कोई मेरी उँगलियों की बत्ती बनाकर भी जला दे तो भी मैं सत्य के भाषण से कभी पीछे नहीं हटूंगा।

5. जितेन्द्रिय - जिस व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया वही जितेन्द्रिय है। मुख्यतः ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियां। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास में मनुस्मृति के श्लोक द्वारा समझाया कि-

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।

अर्थात् मनुष्य की यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त का हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़ों को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाना चाहिए।

6. दाता - जो व्यक्ति देने वाला (दान) है-वह आर्य है। अपनी समार्थ्य के अनुसार जो पवित्र मन-हृदय से, जो उसके पास है, वो सेवा कार्य में लगाकर अपना जीवन धन्य करता है। जिसके पास धन है वो धन दान करता है। कोई विद्या का दान करता है, कोई सेवा करता है, कोई समय दान करता है, कोई श्रम दान करता है, कोई गरीबों असहायों की सेवा करता है। ये कार्य यदि कोई बिना किसी अपने लाभ के लिये करे तो अपने में आर्यत्व के गुणों को विकसित करता है। वह दान देते समय अत्यधिक नम्र बना रहता है।

इस विषय में एक कथानक स्मरण हो रहा है कि - राजा हरिशचन्द्र एक बहुत बड़े दान वीर थे। उनकी एक खास बात थी कि जब वो दान देने के लिए हाथ आगे बढ़ाते तो अपनी नज़रें नीचे झुका लेते थे। ये बात सभी अजीब लगती थी कि ये कैसे राजा है-दान भी देते हैं और इन्हें शर्म भी आती है। ये बात जब गोस्वामी तुलसीदास तक पहुँची तो उन्होंने चार पंक्तियाँ लिखकर उनको भेजीं-

ऐसी देनी देन ज् कित सीखे हो सैन।
ज्यों-ज्यों ऊँचो करो त्यों-त्यों नीचे नैन॥

अर्थात्-हे राजन! तुम ऐसा दान देना कहाँ से सीखे-जैसे-जैसेतुम्हारे हाथ ऊपर उठते हैं वैसे तुम्हारे नैन नीचे क्यों झुक जाते हैं?-अद्‌भुत! राजा ने जो उत्तर दिया वो उत्तर इतना अधिक भाव गर्मित था कि जिसने भी सुना वो राजा की वाह-वाह कर उठा-

देन हार कोई और है भेजत जो दिन रैन।
लोग भरम मुझ पर करें, तासों नीचे नैन॥

अर्थात् - देने वाला तो कोई और है वो परमात्मा - वो दिन रात भेज रहा है - परन्तु लोग ये समझते हैं कि मैं दे रहा हूँ। ये सोच कर मुझे शर्म आ जाती है और मेरी आँखें नीचे झुक जाती हैं। वो ही करता है-वो ही करवाता है-ऐ बन्दे एक सांस भी तेरे बस में नहीं है। वो सुलाता है-वो ही जगाता है - ये है उसकी कृपा।

7. दयालु - जो हृदय दया भावना से पूर्ण है वह आर्य है। किसी दु:खी व्यक्ति को देखकर यदि आपके मन में करूणा का भाव उत्पन्न हो जाये और आप उसकी सहायता करने के लिये तत्पर हो जायें तो आप आर्यत्व के गुण से ओत-प्रोत हैं।

8. नम्रत्व - नम्रता, सरलता, सहजता आर्यत्व का विशेष गुण हैं। किसी के साथ क्रूर व्यवहार न करना, अभद्र व्यवहार न करना, सबसे मधुर भाषण करना, सबके साथ सरल व्यवहार करना ही आर्यत्व है। ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि-

जिह्वाया अग्रे मधु मे, जिह्वा मूले मधुलकम्,
ममेदह क्रता वसो मम चिन्तमु पायसि।

इस प्रकार उपरोक्त गुण व्यक्ति के वो आभूषण हैं जिन्हें वह मृत्यु के पश्चात् भी अपने साथ लेकर जा सकता है क्योंकि ये उसके शुभ कर्मों का परिणाम है।

संस्कार और इनका जीवन में महत्त्व

कु. कंचन आर्या

बहुत लोगों की जिज्ञासा रहती है कि एक ही घर के बच्चों अथवा दो जुड़वाँ बच्चों की आदतों और स्वभाव में जन्म से ही बहुत अन्तर दिखाई देता है। एक तो आराम से सोता रहता है। भूख लगने पर व मल-मूत्र आदि करने पर ही रोता है वह भी बहुत कम, जबकि दूसरा ऐसी स्थितियों में और इसके अतिरिक्त भी खूब रोता और चिल्लाता है और नींद भी बहुत कम लेता है। लगता है कि पहले वाला धैर्यवान, अन्तर्मुखी और गम्भीर स्वभाव का है, तो दूसरा बहुत चंचल और बहिर्मुखी स्वभाव का। दोनों में इतना अधिक अन्तर क्यों दिखाई देता है? जबकि एक ही माता-पिता की सन्तान होने पर तथा एक ही घर के समान वातावरण में रहते हुए तो दोनों में एक जैसी आदतें होनी चाहिए। इस भिन्नता का क्या कारण है? इस विषय में विस्तार से चर्चा की आवश्यकता है।

आप सब अच्छी तरह जानते हैं कि जैसी सॉफ्ट कॉपी होती है, ठीक वैसी ही हार्ड कॉपी प्रिन्ट होकर निकलती है। इसी नियम के अनुसार, जुड़वाँ और एक ही माता-पिता की सन्तानें होते हुए भी इन दोनों की अपनी-अपनी सॉफ्ट कॉपी (हार्ड डिस्क) है, उसी के आधार पर तो इनकी अलग-अलग हार्ड कॉपी तैयार होंगी। यही संस्कार सॉफ्ट कॉपी हैं, जिसके आधार पर स्वभाव और आदतों रूपी हार्ड कॉपी प्रकट होती है। यही इन बच्चों के साथ हो रहा है। दोनों की यह सॉफ्ट कॉपी अलग-अलग है। पिछले जन्मों के शरीर रूपी प्लेयर से निकलकर वही सॉफ्ट कॉपी (सीडी या सिम कार्ड) इस नये शरीर रूपी प्लेयर में आ गई है। अब इनमें से वही म्यूजिक निकलेगा (आदतें प्रकट होंगी) जो पहले भरा जा चुका था। यही कारण है कि वर्तमान में एक ही माता-पिता की सन्तान होते हुए भी तथा घर के समान वातावरण में रहते हुए भी दोनों की आदतों में अन्तर दिखाई दे रहा है।

हम सब अपने जीवन में देखते हैं कि जब आप किसी भी अनजान वस्तु या व्यक्ति को या दूसरा व्यक्ति आपको पहली बार देखता है, तो आपकी आपस में पहचान नहीं होती। जिसे एक के बाद दूसरी बार देखते हैं तो देखते ही पहचान लेते हैं कि 'हाँ इनको पहले कहीं देखा है'। भले ही उनसे संबन्धित कोई बात याद न रहे। ऐसा तब होता है जब आप एक लम्बे अन्तराल के बाद मिलते हैं। यदि एक-दो दिन के बाद मिलें तो वे घटनायें और बातें भी याद रहती हैं। और जब आपस में लगातार दो-तीन या अधिक बार मिलते रहते हैं, तो कई बार यह पहचान घनिष्ठता तक भी पहुँच जाती है। आपने कभी सोचा यह सब कैसे हो जाता है? आपने तो उनको याद रखने के लिए कोई कोशिश नहीं की थी। हाँ तो बच्चो, होता यह है कि जिस प्रकार खुले कैमरे का फोकस जिसकी तरफ होता है, उसका ही चित्र उसमें कैद हो जाता है, उसी प्रकार जब आप किसी नये व्यक्ति को देखते या उसके सम्पर्क में आते हैं तो उसकी शक्ल या बातों का चित्र नैगेटिव के रूप में आपके मस्तिष्क में बैठ जाता है। यदि उस व्यक्ति का व्यवहार, स्वभाव आदि आपको अपने अनुकूल और अच्छे लगते हैं, तो एक अच्छे व्यक्ति के रूप में तथा इसके विपरीत हो तो बुरे व्यक्ति के रूप में उसकी छाप, एक स्मृति (memory) के रूप में आपके मन में बैठ जाती है और आप उसे वैसा ही मानने लगते हैं। यह छाप ही संस्कार (impression) के रूप में जानी जाती है। जब हम बार-बार उनसे मिलते हैं तो उनके प्रति अच्छे या बुरे रूप में हमारे संस्कार पक्के होते जाते हैं। तब अच्छे लगने वाले व्यक्ति के साथ हम बार-बार मिलना चाहते हैं तथा मित्रता करना चाहते हैं। इस प्रकार हमारी उनके साथ घनिष्ठता भी बढ़ने लगती है। यदि दुबारा उनसे मिलना न हो पाये तो हम उन्हें भूल भी जाते हैं, जैसा कि प्राय: रेलयात्रा आदि के समय होता है। कारण कि उनके साथ हुए परिचय के संस्कार धीरे-धीरे धूमिल होने लगते हैं और अन्ततः हम उन्हें भूल ही जाते हैं।

ऐसा ही हमारे विचारों के साथ भी होता है। इसी प्रक्रिया के आधार पर अलग-अलग इन्द्रियों के माध्यम से हमारे अन्दर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द आदि के अच्छे-बुरे संस्कार पड़ते जाते हैं और हम उनसे परिचित होते जाते हैं। जिन विषयों का सम्पर्क बार-बार होता रहता है, वे संस्कार पक्के होते जाते हैं, सम्पर्क न होने पर धीरे-धीरे उस विषय के संस्कार कमजोर होने लगते हैं। इन्हीं संस्कारों के साथ हमारी स्मृति भी जुड़ जाती है। यदि ये संस्कार और स्मृति न हों तो हम संसार में न किसी को जान और पहचान सकेंगे और न ही व्यवहार आदि कर सकेंगे। क्योंकि एक बार देखने के बाद हम भूल ही जायेंगे कि अमुक हमारे माता, पिता, भाई, बहिन या अन्य कोई सम्बन्धी हैं। फिर उनके साथ व्यवहार करना कैसे सम्भव है? आप कल्पना करिए क्या इस प्रकार हमारा जीवन सम्भव है? नहीं न। अतः दैनिक व्यवहार के लिए इन संस्कारों की कितनी अधिक महत्ता है।

जरा आप याद करिए उस समय को, जब आप नर्सरी क्लास में पढ़ने गये थे। तब आप शब्दों और वाक्यों के बारे में क्या जानते थे, क्या तब आप इतनी बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ने की कल्पना कर सकते थे? नहीं न। उस समय आपके लिए यह सब पढ़ना बिल्कुल असम्भव ही लगता था। नर्सरी में आपने सबसे पहले वर्णमाला (alphabets) सीखी और ये संस्कार व स्मृति के रूप में आपके मस्तिष्क में बैठ गये। उसके बाद इन वर्णों से शब्द और शब्दों से वाक्य सीखते गये। ये सब संस्कार आपके मस्तिष्क में इकट्ठे होते गये। धीरे-धीरे आज वे इस योग्य हो गये हैं कि इतनी उच्च शिक्षा की मोटी-मोटी पुस्तकें भी आसानी से पढ़ सकते हैं। यदि उस समय सीखे गये अक्षरों के संस्कार ही न रहते तो कोई भी मनुष्य कुछ भी सीखने में समर्थ न हो पाता। मेरे विचार से अब आप संस्कारों को मोटे रूप में समझ गये होंगे।

ये संस्कार मस्तिष्क में पहली बार ही नहीं, अपितु जब जन्म लेते हैं उस समय से ही हर बच्चे के अन्दर अपने-अपने संस्कार फीड होते हैं। कुछ संस्कार तो प्रत्येक में एक जैसे मिलते हैं। जैसे--भूख-प्यास लगने पर अथवा कोई अन्य दुःख (जैसे--गीला लगना, कहीं पीड़ा आदि होना) महसूस होने पर रोना तथा सोना आदि। परन्तु इनको प्रकट करने के ढंग में हम अन्तर देखते हैं। यहाँ तक कि एक ही घर के बच्चों यानि भाई-बहिनों में और यहाँ तक कि लगभग एक ही समय में उत्पन्न हुए जुड़वाँ (twins) बच्चों में भी यह अन्तर दिखाई देता है। कोई बच्चा कम रोता है तो कोई रो-रो के आसमान सिर पर उठा लेता है। थोड़ा बड़ा होने पर एक बच्चा माता-पिता का कहना आराम से मान लेता है तो दूसरा बहुत तंग करता है। एक बहुत सहनशील है, तो दूसरा हर बात में जल्दी मचाता है और बात-बात पर गुस्सा करता है। एक का पढ़ने में मन लगता है, तो दूसरे का बिल्कुल नहीं, वह खेलने में अधिक रुचि रखता है। एक की बुद्धि और स्मरण शक्ति बहुत तेज है तो दूसरे की सामान्य या बिल्कुल कमजोर। एक को शीघ्र ही गुस्सा आ जाता है तो दूसरा शान्त ही रहता है। इस प्रकार से अनेक तरह की भिन्नतायें और कुछ समानतायें भी देखने को मिलती हैं। यहाँ सोचने की बात है कि दोनों एक ही माता-पिता की सन्तानें हैं और एक जैसे वातावरण में पले-बढ़े हैं। फिर भी उनके स्वभाव और आदतों में इतना अधिक अन्तर क्यों? निश्चय ही यह उनके अन्दर फीड हुए किसी पहले अन्तर की ओर संकेत कर रहा है। इसी अन्तर अथवा पृष्ठभूमि को हम 'संस्कारों' के नाम से कहते और जानते हैं। इस प्रकार, इन्हीं संस्कारों की नींव पर किसी व्यक्ति का सारा भविष्य और व्यक्तित्व निर्भर करता है।

Reg. No.: 3588

VIKAS MOTOR

VIKAS ARORA

ALL TYPES OF COMMERCIAL & PRIVATE CAR SALE & PURCHASE

C-24, 2nd Floor, Sanwal Nagar, Opp. Sadiq Nagar, New Delhi-110049

Mob.: +91-9911150670, +91-9958372126, +91-9811150775

E-mail : vikasmotor@gmail.com

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध (अथर्ववेद के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. उमा आर्या - असिस्टेंट प्रोफेसर
सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वैदिक काल में शिक्षा द्विमुखी प्रक्रिया पर आधारित थी, एक ध्रुव पर शिक्षक तथा दूसरे पर शिष्य होता था।

आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवासी उत्तररुपम्, विद्या सन्धि, प्रवचनं संधानम्।

मानव का उच्च ज्ञान पाँच आधारों पर खड़ा होता है। इसका साक्षात् सम्बन्ध मानव के रूपान्तरण से है। इस अधिलोक में आचार्य का महत्व पूर्वरूप में परिगणित किया गया है तथा अन्तेवासी को उत्तररूप कहा गया है। इन दोनों की सन्धि अर्थात् जोड़ विद्या कहलती है, और सन्धि को सम्भव बनाने वाला आचार्य का प्रवचन है।

गुरु शिष्य का सम्बन्ध पितापुत्रवत् सम्बन्ध है। उपनयन संस्कार के बाद शिष्य गुरु के समीप जाकर अन्तेवासी हो जाता है। वैदिक युग में दोनों के बीच का सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे।

गुरु तथा शिष्य परस्पर कर्त्तव्यबद्ध एवं समर्पित थे। विद्यार्थी के लिए अपना गुरु आदर्श होता था। गुरु का आदेश बिना तर्क-वितर्क के शिरोधार्य होता था। गुरुकुल (आचार्य-कुल) में रहते हुए शिष्य समस्त विद्याओं को धारण करता था।

वैदिक काल की शिक्षा पद्धति और गुरुकुल व्यवस्था का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिष्यगण के लिए ब्रह्मचर्य पालन, सन्ध्योपासना, भिक्षाटन, अध्ययन, अध्यात्मिक विद्या को ग्रहण करना, यहाँ तक कि आचार्य की आज्ञा से भोजन ग्रहण करना ये सभी नियम पालन किए जाते थे।

आचार्य के सम्मान में प्रयुक्त होने वाले विशिष्ट उपाधियाँ थी। जिनका प्रयोग सम्मानार्थ किया जाता था।

1. **आचार्य**- आचार्य ग्राह्यति आचिनोति अर्थान्,। आचिनोति बुद्धिमिति वा अर्थात् जो विद्यार्थी को आचार-(आचारण सम्बन्धी) व्यवहार, ज्ञान को प्रदान करता है। ग्रहण योग्य पदार्थों को ग्रहण कराता है, विवेकप्रदाता है।

2. **गुरु**- अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर ज्ञान का प्रकाश करने वाला गुरु होता है। अज्ञानान्धतमसं व्यवच्छिद्य ज्ञान ज्योतिर्ज्वालयति।

3. **उपाध्याय**- उपेत्य अधीयते इति उपाध्यायः। जिसके पास जाकर अध्ययन किया जाए, वह उपाध्याय कहलाता है।

4. **शिक्षक (अध्यापक)**- शिष्य के मन में सीखने की इच्छा का जागृत करे वह शिक्षक कहलाता है।

अथर्ववेद के अनुसार आचार्य (रात्री) प्रवेश से पूर्व विद्यार्थी को तीन (दिन) परीक्षण में रखता था। कठोर परीक्षण के बाद ही वह विद्याधिकारी होता था। तत्पश्चात् विद्यार्थियों का उपनयन संस्कार होता था।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते
गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुम्
अभिसंयन्ति देवाः॥

आचार्य अपने शिष्य को तीन रात्रियों तक गर्भ में रखता है। दिन रात्रि से तात्पर्य अत्यन्त निकट रखकर परीक्षण करना है। रात्रि- अज्ञान, अन्धकार का प्रतीक हो सकती है। यही विद्यार्थी का द्विज है- "दूसरा जन्म"। गर्भ में रखने से तात्पर्य निकटता, सामीप्य का बोध कराता है। आचार्य परम्परा में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध, माँ तथा गर्भस्थ शिशु के समान था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार माता-पिता केवल शरीर को ही जन्म देते हैं। आचार्य पिता के द्वारा शिष्य का श्रेष्ठ जन्म होता है। शैक्षिक जन्म शारीरिक जन्म से श्रेष्ठ है।

गुरु शिष्य सम्बन्ध इतना पवित्र सम्बन्ध था कि विद्यार्थी यज्ञ के पश्चात् अग्निदेव से प्रार्थना करते थे कि हे अग्निदेव! हमें दीघायु करें और आचार्य को अमर बनाएँ। इससे स्पष्ट है कि निश्छल और विनम्रता शिष्य के आभूषण थे।

"इयं समित् पृथ्वी द्यौ द्वितीय उत अन्तरिक्षं समिधा पृणाति ब्रह्मचारी समिधा मेखलया क्षमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति।"

ब्रह्मचारी, समिधा, मेखला, श्रम और तप द्वारा लोकों का पोषण करता है। तीन समिधाओं में प्रथम समिधा पृथ्वी है, दूसरी द्युलोक तथा तीसरी अन्तरिक्ष है। समिधा ही अग्नि को धारण करती है। मेखला उस अग्नि को मर्यादित रखती है। यह ऊर्जा को उत्पादित करने तथा उसे मर्यादा की सीमा में प्रयुक्त करने का संकेत है। श्रम स्थूल पुरुषार्थ का तथा तप सूक्ष्म पुरुषार्थ का प्रतीक है। शरीर क्रम में प्रथम समिधा पृथ्वी नाभि से नीचे का वाला अंग है। पहले स्थूल ब्रह्मचर्य का अभ्यास किया जाता है। द्युलोक दूसरी समिधा है। अर्थात् विचारों को ब्रह्मानुशासन में लाना दूसरा चरण है। तृतीय भाग अन्तरिक्ष नाभि से कंठ तक का हृदय भाग तीसरी समिधा है। अर्थात् भावों को ब्रह्ममय बनाना तीसरा चरण है। इन्हीं से क्रमशः अशक्ति, अज्ञान तथा अभाव की तीन रात्रियों का निवारण होता है।

आचार्य शिष्य को उपदेश करता है कि ब्रह्मचर्य से ही राष्ट्र रक्षा हो सकती है। प्रत्येक ब्रह्मचारी (वटुक) को ब्रह्मचर्य का पालन करना नितान्त आवश्यक होता था। ब्रह्मचर्य एवं तप शक्ति से ही शासक राष्ट्र रक्षित कर सकता है। भारतीय आचार्य-शिष्य परम्परा में आचार्य भी ब्रह्मचर्य के सामर्थ्य से ब्रह्मचर्य की आस्था वाले (शिष्य) की कामना उनके सृजन के प्रयास के लिए करता था।

आचार्य शिष्य का निर्माणकर्ता होता है। वह शिष्य को नयी दृष्टि प्रदान करता है। फिर यही शिष्य, एक श्रेष्ठ आचार्य बनता है। वही ब्रह्मचारी प्रजापति (प्रजापालक शासक) बनता है। ऐसा राजा ही ब्रह्मानुशासनयुक्त राज्य करता है। विराट् को वश में करने वाला इन्द्र के समान शासन करने वाला नियन्ता बनता है।

भारतीय गुरु-शिष्य सम्बन्ध परम्परा में आचार्यगण का कर्त्तव्य दिव्य गुणयुक्त, तपस्वी व्यक्तित्व गढ़ने का दायित्व भी होता था। आचार्य यह तभी करने में समर्थ होगा यदि वह विद्वान्, वाचस्पति, वसुपति , तत्त्वदर्शी, तेजस्वी, सदाचारी, संयमी होता है।

वैदिक साहित्य में गुरु-शिष्य सम्बन्ध अत्यधिक कर्त्तव्यबद्ध संयम है। आचार्य के कर्त्तव्य और गुणों की परायणता देखी जा सकती है। ऋग्वेद में शिक्षक को अग्नि के गुणयुक्त दर्शाया गया है-

वेधा अदृप्तो अग्निविजानन्, ऊर्धन् गोनां स्वाद्मा पितूनाम। पिता पुत्रः सन्।

वेधा- शिष्यों के चरित्र का निर्माण करने वाला।

अदृप्त- दर्प या अभिमान से रहित होता है।

अग्नि- अग्नि के समान प्रकाश स्वरूप तेजस्वी होता है।

विजानन्- विविध विषयों का जानने वाला।

ऊधर्न गोनाम्- गाय के सदृश ज्ञानरूपी दुग्ध की वर्षा प्रदान करने वाला।

स्वाद्मा पितूनाम्- विषय को सुरुचिकर बनाकर देने वाला होता है।

पिता पुत्र सन्- गुरु का पुत्रवत् शिष्य होकर गुरु से भी विद्वान होकर योग्यता के द्वारा आदरणीय होता है।

शिष्य अन्तेवासी होते थे। ये आचार्य के आश्रम में विद्या पूर्ण होने तक वही रहते थे। ये छात्र आचार्य (कुलवासी) कहलाते थे। जो आचार्य कुल में रहने वाले छात्र होते थे। जिसे गुरुकुल कहा जाता है। यहाँ छात्र विद्यार्जन के लिए तीव्र जिज्ञासु होते थे। गुरुकुलों में छात्रों का सर्वाङ्गीन विकास होता था। आचार्य एक आदर्श संरक्षक के रूप में शिष्यगण की सम्पूर्ण गतिविधियों का ध्यान रखता था। वैदिक कालीन गुरु-शिष्य परस्पर मित्रवत् ससम्मान व्यवहार करते थे। पारस्परिक मधुर सम्बन्ध ही शिक्षा प्राप्ति का साधन (सेतु) होते थे।

शिष्य परा अपरा विद्या का अर्जन करके जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर लेता था। अतः कहा जा सकता है भारतीय ज्ञान परम्परा में कि गुरु शिष्य सम्बन्ध अतिश्रेष्ठ तथा घनिष्ठ होता था।

कश्मीर की वैदिक परंपराए

(The Vedic Traditions of Kashmir)

Dr. Divya Rana, Ph.D. (Ancient History)
Faculty, Bharti College NCWEB Centre, University of Delhi

कश्मीर एक ऐसा राज्य है जिसको लेकर भारत-पाकिस्तान के बीच खीच-तान की स्थिति कई सालों से बनी हुई है, परन्तु अब जम्मू-कश्मीर को एक पूर्ण राज्य से केन्द्र शासित प्रदेश बनाये जाने पर और यहां से धारा 370 हटाये जाने पर, जम्मू-कश्मीर के इतिहास में एक नया अध्याय और जुड़ गया। जिसको लेकर पड़ोसी देश में भी आक्रोश की स्थिति बनी हुई है। आखिर कश्मीर का क्या इतिहास है? जिसको लेकर पड़ोसी देश भी भिड़ते रहते हैं। कश्मीर एक मुख्य विषय बन गया है, जिस पर अध्ययन-अध्यापन करना आवश्यक हो गया जिससे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का हल निकल सकें।

मान्यता है कि भारत में व्यवस्थित समाज का स्वरुप वैदिक काल से आरम्भ हुआ है। परन्तु हमें सभ्य, सुसंस्कृत, विकसित, नगरीकरण शहर का सामाजिक स्वरुप सिन्धु घाटी सभ्यता में भी मिलती है। ऋग्वैदिक काल जिसका स्वरुप 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक विकसित एवं सभ्य थी। प्रश्न यह उठता है कि क्या कश्मीर में प्रचलित जो परंपराएं थी वो वैदिक काल में थी? तो यह कहना गलत न होगा कि कश्मीर उस समय ऐसा सम्पन्न राज्य था जहां पर राजाओं का शासन सर्वप्रथम वही से बनना आरम्भ हुआ था। शिक्षा और संस्कृति का मुख्य केन्द्र था जिसका असर वैदिक काल में देखने को मिलता है।

यह प्रमाणित है कि सर्वप्रथम राजनीति की, शासन का प्रारम्भ कश्मीर में हुआ था। कल्हण की राजतरंगिणी यह बताती है कि किस तरह, कैसे-कैसे, कौन, कब-कब राज कश्मीर के बने, जिसकी बहुत लम्बी गाथाएं है। अत: कश्मीर का राजनीतिक इतिहास राजतरंगिणी में ही व्यवस्थित ढंग से मिलता है। परन्तु यह बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा में लिखी गई तथा ज्यादातर काल्पनिक सी प्रतीत होती है। कश्मीर का इतिहास मुख्य रुप से राजतरंगिणी, नीलमत पुराण में मिलता है तथा महाभारत आदि ग्रन्थ भी कश्मीर के विषय में बताते हैं। अन्य ग्रन्थ 'पार्थिवाबलि' की रचना हैलाराज नामक ब्राह्मण ने पाशुपत नाम वाले व्रत की दीक्षा से युक्त होकर की थी। इस ग्रन्थ के आधार पर पद्मिहिर कवि ने सम्राट अशोक के पूर्वज 'लव' आदि आठ राजाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। इस तरह प्राचीन ग्रन्थों से राजाओं के देश-काल की उन्नति-अवनति को लेकर जो भ्रांति उत्पन्न होती रही है उसे दूर करने में राजतरंगिणी की कथा उपयुक्त समझी गई है (जो केवल कथा है उसे पूरी तरह से सत्य नहीं माना जा सकता)।

कथानुसार महाप्रलय के बाद जब ब्रह्मा ने दुबारा संसार की रचना का आरम्भ किया तब से लेकर छ: मन्वंतर तक हिमालय के भीतरी भाग में सतीसर नामक एक महासरोवर था। एक मन्वंतर तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्ष का माना गया है। छठे मन्वंतर के पश्चात् सातवें मन्वंतर में ऋषि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि से यह कहते हुए "सतीसर नामक महासरोवर के भीतर जलोभ्दव नाम का एक असुर रहता है, तुम सब मिलकर उस सरोवर का भेदन करो और असुर को मृत्यु देने" का आग्रह किया था। तभी सभी देवताओं ने महासरोवर का भेदन कर असुर की हत्या कर दी और मानसरोवर की भूमि पर कश्मीर नामक मण्डल स्थापित हुआ।

पौराणिक कथाओं के अनुसार कश्यप ऋषि के नाम पर कश्यप सागर (कैस्पियन सागर) जो कश्मीर का प्राचीन नाम था, रखा गया था। कश्यप की पत्नी कद्रु के गर्भ से नागों की उत्पत्ति हुई जिनमें आठ प्रमुख नाग वंश

अनंत (शेष), वासुक, तक्षक, कर्कोटक, पद्द, महापद्द, शंख और कुलीक थे, इन्हीं से नाग वंश की स्थापना हुई थी। नागवंशीय की राजधानी अनंतनाग थी, जिसका बाद में कश्मीर नाम पड़ा। आज भी इन नाग वंश के नाम पर कश्मीर में कई स्थानों के नाम रखे गये मिलते हैं, जिनमें अनंतनाग, कमरु, कोकरनाग, वेरीनाग, नारानाग, कौसर नाग आदि शामिल हैं। 'वराहमूल का अर्थ' सुअर दाढ़ या दांत निकाला गया है। वराह नामक भगवान के द्वारा अपने दांत से धरती उठा लेने की कहानी बताई गई है। इस तरह कश्मीर के बड़गाम, पुलवामा, शोपियां, गेदरबल, बांडीपुरा और कुलग्राम जिला के अपने अलग पौराणिक और प्राचीन नाम है।

राजतरंगिणी, नीलमत पुराण, के अनुसार कश्मीर की घाटी बहुत बड़ी झील हुआ करती थी। नीलमत पुराण में नीलमाताकाशमीरा के नाम पर कश्मीर को लिए वालर झील मीरा नाम रखे जाने का उल्लेख है जिसका अर्थ समुद्र झील या ऋषि कश्यप का पहाड़ था। इस प्रकार कश्मीर के नाम को लेकर अलग-अलग गाथाएं या विचार मिलते हैं, जैसे- ऋषि कश्यप द्वारा असुर को मारने के कारण घाटी को 'कश्यप मार' (कशेमर्र) कहा गया। कश्मीर की वादी में नाग नामक राक्षस को शिव की पत्नी सती और ऋषि कश्यप ने मिलकर युद्ध में हराकर वध कर दिया गया था और वहां की बर्फ वादी पिघलकर ज्यादातर पानी वितस्ता (झेलम) नदी के रास्ते बहा दिया गया, जिससे इस जगह का नाम 'सतीसर' से कश्मीर रखा गया। एक अन्य कथन कश्मीर का वास्तविक नाम 'कश्यपमर' (कछुओ की झील) था, जिससे इसका नाम कश्मीर पड़ा।

अतः मत्स्य पुराण के अनुसार देवताओं के पितृगण (अग्निस्वात) जहां निवास करते थे वहां मरीच पुत्र कश्यप के वंशज 'सोमपथ' के नाम से विख्यात थे। अंततः यह कहा गया कि जल में निवास करने वाले नागराज अथवा नाग वंश या 'जलोभ्दव' नामक राक्षस की हत्या की तथा जल रुपी बर्फ वादी को पिघलाकर नदी के प्रवाह के साथ बहा दिया और अपने नाम (कश्यप) पर कश्मीर का नाम रखवा दिया। परन्तु भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार खदियानयार, बरामूला में पहाड़ों के धसने से झील का पानी बह गया और कश्मीर में रहने योग्य स्थान बने।

ऋग्वेद में पर्वतों में हिमवन्त (हिमालय), मूजंवत (हिन्दकुश), त्रिकोटा पर्वत के नाम मिलते हैं जो कश्मीर के भौगोलिक क्षेत्र को दर्शाता है। शोधकर्ताओं का मानना है कि कैस्पियन सागर से लेकर कश्मीर तक ऋषि कश्यप के कुल के लोगों का राज्य था और कैलाश पर्वत के आस-पास भगवान शिव के गणो की सत्ता तथा उक्त इलाके में राजा दक्ष के साम्राज्य विस्तार का उल्लेख है। श्रीनगर जिसका पुराना नाम 'प्रवर-पुर' था, के दोनों ओर हरी पर्वत और शंकराचार्य पर्वत है। आदि शंकराचार्य ने इसी पहाड़ी पर भव्य शिवलिंग, मंदिर और मठ बनवाया था। हरी पर्वत का तात्पर्य भगवती रुपी पंछी से है जिसने देवताओं के आग्रह करने पर अपनी चोंच में पत्थर रखकर जलोभ्दव राक्षस की हत्या की थी और ऋषि कश्यप को सुरक्षा प्रदान की। शंकराचार्य पर्वत के समीप अति प्राचीन दुर्गानाथ मंदिर के विध्वंस के मलबे से ही लकड़ी की हमदन मस्जिद बनाई गई थी। वहां के जलस्रोत में काली प्रतिमा थी जिसकी पूजा की जाती थी। इस कथा को तथ्यात्मक रचनाकाल नहीं मिलता। कश्मीरी लोग अमरनाथ क्षेत्र में महर्षि पुलत्स्य के भव्य आश्रम में वेद पढ़ते थे, जिनके नाम की 'वालीपुलस्ता' नदी आज भी मिलती है।

पुरातात्विक साक्ष्य से कश्मीर से संबंधित कुछ जानकारी मिलती है। नवपाषाण काल में (10 हजार वर्ष ई.पू.-2500 ई.पू. के बीच) मानव का जीवन एक सीमा तक सुनियोजित था तथा इनका स्थायी निवास भी था। इस काल में मिट्टी के सरकण्डे से घर निर्मित होते थे जो गोलाकार तथा आयताकार होते थे। मेहरगढ़ के अनुमानित 7570 ई.पू. से 6200 ई.पू. के बीच उत्खनन से एक कब्र में मृतक के साथ बकरी के भी अवशेष मिले है जो कश्मीर की मुख्य पशु होती थी। जम्मू-कश्मीर का बुर्जहोम और गुफ्कराल स्थान नवपाषाण काल से संबंधित है। बुर्जहोम से अस्थियां एवं पत्थर से बने औजार प्राप्त हुए है, जिससे

स्पष्ट होता है कि यहां के निवासी शिकार और कृषि पर निर्भर थे तथा व्यक्ति के शव के साथ उसके कुत्ते को कब्र में दफनायें जाने के साक्ष्य मिले है। गुफ्कराल स्थान कश्मीर में त्राल नामक क्षेत्र के निकट अवस्थित बताया गया है। पाषाण काल में कश्मीर संस्कृति का भी प्रमाण मिलता है:-

- महपाषाण संस्कृत- इसमें मृतको को दफनाया जाता था, यह प्रथा दक्कन, दक्षिण भारत, उत्तर-पूर्वी भारत और कश्मीर में प्रचलित था। अत: पत्थर के कब्रो को महापाषाण कहा जाता था।
- निम्न पुरापाषाण काल की संस्कृति- इसमें शल्क, गड़ांस (औजार), पंजार, कश्मीर, सोहन-खडंकधारी, सिंगरौली घाटी, हस्त कुठार में पाए गए है जो इन राज्यों से संबंधित है।
- निम्न नवपाषाण संस्कृति- बुर्जहोम एवं गुफ्कराल (कश्मीर) से संबंधित संस्कृति के प्रमाण मिले हैं।

इस प्रमाण से स्पष्ट होता है कि कश्मीर की संस्कृति अधिक प्राचीन प्रचलित और विकसित थी जिसका चलन वैदिक में भी देखने को मिलता है।

- कश्मीर में प्रसिद्ध लगध, चरक, नागसेन तथा विष्णु शर्मा जैसे आदि रचनाकार अथवा कवि हुए हैं जिन्होने प्राचीन समय में साहित्य की रचना की, जिनमें लगध का 'वेदांग जो 1400-1200 ई.पू. में रचा गया था। चरक की 'आयुर्वेद' है जिसकी रचना 300 ई.पू. है। विष्णु शर्मा का 'पंचतंत्र' की रचना 300 ई.पू. में तथा दूसरी शताब्दी ई.पू. में नागसेन द्वारा 'बुद्ध का धर्म' लिखी गई। इस पुस्तक में पाली मिनांडर के द्वारा बुद्ध से धर्म के प्रश्न पूछकर उनके उत्तर की व्याख्या की गई है। 'चरक' एक वैद्य के रुप में वैदिक ग्रंथों में मिलते है, जिससे यह कहा जा सकता है कि कश्मीर और वैदिक परंपराएं मिलती है क्योंकि चरक इतने विख्यात थे कि वह कश्मीर से लेकर उत्तर भारत में भी महान वैद्य के रुप में सेवारत थे।
- पुराणों में यह गाथा सुनने को मिलती है कि ऋषि कश्यप के पुत्र 'विस्वान' से मनु का जन्म हुआ था तथा मनु को इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रान्शु, नाभाग, दिष्ट, करुष और वृषध्र नामक दस पुत्रों की प्राप्ति हुई थी। मत्स्य पुराण में अच्छोद सरोवर और अच्छोदा नदी का उल्लेख हुआ है जो कि कश्मीर में स्थित है-

अच्छोदानामंतेषांतु मानसी कन्यका नदी ॥

(मत्स्य पुराण 14.2)

अच्छोदानामं च सर:पितृभिर्निर्मितंपुरा।
अच्छोदातुतपश्चक्रेदिव्यंवर्षसहस्त्रकम्॥

(मत्स्य पुराण 14.3)

राजतरंगिणीनुसार 1184 ई.पू. के राजा गोनंद से लेकर राजा विजय सिम्हा (1129 ई.) तक के कश्मीर के प्राचीन राजवंशों अथवा राजाओं का प्रमाणित दस्तावेज है। कलियुग में कश्मीर देश राजसिंहासन पर कौरव-पाण्डव के समकालीन तीसरे गोनन्द तक बावन नरेश बैठ चुके हैं जिन्होनें 2268 वर्ष तक शासन किया। कथनानुसार द्वापर युग के अंत में महाभारत का युद्ध हुआ था, जिसमें युधिष्ठिर का शककाल 2556 माना गया है।

नीलमत पुराण के अनुसार प्रथम गोनन्द प्रतापी राजा कश्मीर का पहला शासक माना गया है। इसके बाद गोनन्द का पुत्र दामोदर गद्दी पर बैठा। इसकी मृत्यु (कृष्ण के द्वारा) होने के बाद इसकी पत्नी यशोमती देवी गर्भवती थी जिसका श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के द्वारा राज्याभिषेक कराकर गद्दी पर बैठाया। यशोमती का जब पुत्र हुआ तो उसका नाम गोनन्द द्वितीय रखा गया और बाल्यावस्था में ही इसका कश्मीर के राजसिंहासन के लिए राज्याभिषेक किया गया। बाल्यावस्था होने के कारण राजसिंहासन पर हुए आक्रमण का जवाब नहीं दे सका जिससे राज्य पर संकट आने शुरु हो गए। इसके बाद के 35 राजाओं का इतिहास नहीं मिलता क्योंकि वह नष्ट हो गया है। तत्पश्चात 'लव' नामक राजा का उल्लेख मिलता है जो कि कश्मीर का शासक हुआ, फिर लव का पुत्र 'कुशेराय' राजा बना।

इसके बाद इसका पुत्र 'खगेन्द्र' राजा बना तथा इसने खागि और खोनमुष नामक दो अग्रहारो को स्थापित किया था।

कल्हण की राजतरंगिणी के प्रथम तरंग में सर्वप्रथम कश्मीर में पाण्ड्यों के सबसे छोटे भाई 'सहदेव' द्वारा कश्मीर राज्य स्थापित किये जाने का उल्लेख है। इसके समय में वैदिक धर्म का प्रचलन था। तत्पश्चात् 273 ई.पू. में कश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ था। राजतरंगिणी के प्रथम तीन अध्यायों में कश्मीर की पीढ़ी दर पीढ़ी की मौखिक परंपराओं का चित्रण किया गया है। इस ग्रंथ के आठ तरंगों तक में कश्मीर के राजाओं की सूची एवं उनके शासन व्यवस्था का भी उल्लेख हुआ है।

कश्मीर के जनपद (गंधार, कंबोज, कुरु)

महाभारत काल के पूर्व कश्मीर के हिस्से भारत के 16 महाजनपदों में से तीन गंधार, कंबोज और कुरु महाजनपद के अन्तर्गत आते थे। गंधार आज के पाकिस्तान का पश्चिमी तथा अफगानिस्तान का पूर्वी क्षेत्र उस काल में भारत का गंधार प्रदेश था। आधुनिक कंदहार इस क्षेत्र से दक्षिण में स्थित था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय गंधार में कई छोटे-छोटे रियासतें थी, जैसे-अभिसार, तक्षशिला आदि। पुरुषपुर (पेशावर) तथा तक्षशिला इसकी राजधानी थी। इसका अस्तित्व 600 ई. पू. से 11 वी. सदी तक रहा। उल्लेखनीय है कि सभा पर्व में महाभारत के अभिसारी नामक नगर का उल्लेख हुआ है जो चिनाव नदी के पश्चिम में पूच्छ, राजौरी और भिंभर की पहाड़ियों में स्थित था।

कम्बोज- इसका विस्तार कश्मीर से हिन्दूकुश तक था, इसके प्रमुख नगर राजपुर (राजौरी) और नंदीपुर थे। पाकिस्तान का हजारा जिला कंबोज के अन्तर्गत आता था। बाल्मीकी रामायण के अनुसार कंबोजवाल्हीक और बंदायु देश के पास स्थित है। आधुनिक मान्यतानुसार कश्मीर, राजौरी से तजाकिस्तान तक हिन्दूकुश पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश है और पामीर का पठार हिन्दूकुश और हिमालय की पहाड़ियों के बीच का स्थान है। कनिघम ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'एशिएंटजियोग्राफी ऑफ इण्डिया' में राजपुर का अभिज्ञान दक्षिण-पश्चिम कश्मीर के राजौरी नामक नगर से किया है। यहाँ नंदीनगर नामक एक और प्रसिद्ध नगर था। सिकंदर के आक्रमण के समय कंबोज प्रदेश की सीमा के अन्तर्गतऊर्शा (हजारा की राजधानी पाकिस्तान) और अभिसार (कश्मीर का जिला पूच्छ) नामक छोटे-छोटे राज्य बसे थे। आधुनिक नाम काबुल, गंधार, बल्ख, वाखान, बगराम, पामीर, बदख्शां, पेशावर, स्वात, चारसद्दा आदि को संस्कृत और प्राकृत-पालि साहित्य में क्रमशः कुंभा या कुहका, गंधार, वाल्हीक, वोक्काण, कपिशा, मेरु, कंबोज, पुरुषपुर (पेशावर), सुवास्तु, पुष्कलावती आदि के नाम से जाना जाता था।

कुरु- महाभारत में कुरु शासक का क्षेत्र मेरठ और थानेश्वर का उल्लेख है जिसकी राजधानी पहले हस्तिनापुर और बाद में इंद्रप्रस्थ थी। कुरु के राजा का क्षेत्र विस्तार पूर्व-दक्षिण से कश्मीर तक था। बौद्ध काल में यह सम्पूर्ण क्षेत्र कुषाणों के अधीन हो गया।

कश्मीर प्राचीन काल में ऐसा राज्य था जहाँ शैव मत, इस्लाम और बौद्ध धर्म की मिश्रित संस्कृति देखने को मिलती है। सम्राट अशोक द्वारा तीसरी शताब्दी ई.पू. में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार कश्मीर में किया गया था। 530 ई. के आस-पास उज्जैन साम्राज्य स्थापित हुआ। विक्रमादित्य राजवंश के पतन के पश्चात कश्मीर पर स्थानीय शासक का राज पूनः आरम्भ हो गया। छठी शताब्दी में यहाँ पर शैव दर्शन का आरम्भ हो गया जिसका पहला अनुयायी मिहिरकुल था तथा इसने हूण वंश की स्थापना की। इस तरह कश्मीर में अन्य वंशों ने साम्राज्य स्थापित किया। अतः मौर्य सम्राट अशोक और कुषाण सम्राट कनिष्क के समय कश्मीर बौद्ध धर्म और संस्कृति का मुख्य केन्द्र बन गया था। पूर्व मध्यकाल में यहाँ को चक्रवर्ती सम्राट ललितादित्य ने एक विशाल साम्राज्य कायम कर लिया था और कश्मीर को संस्कृत विद्या का विख्यात केन्द्र बनाया। कश्मीर को पुरातन काल में ऋषिभूमि या शारदा पीठ भी कहा जाता था। बच्चे जब शिक्षा लेना शुरु करते थे तो उन्हें कश्मीर की तरफ मुंह

करके बिठाया जाता था और श्लोक बुलवाया जाता था.....

नमस्ते शारदे देवी काश्मीरपुरवासिनी।
त्वामुंहहार्थयेनित्यंविद्यादनं च देहि में॥

कश्मीर को सूफी संतो का भी प्रदेश कहा गया है। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में कहा है कि कश्मीर को आध्यात्मिक ताकत से जीता जा सकता है सैन्य शक्ति से नहीं। 268 ई.पू. से लेकर 232 ई.पू. तक शासन काल में अशोक द्वारा कश्मीर में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के उपलक्ष में कल्हण कहते हैं कि बेशक कश्मीर अशोक की राजधानी पाटलीपुत्र से दूर थी लेकिन कश्मीर को हर एक फायदे अशोक द्वारा प्रदान की गई थी और कश्मीर की आर्थिक स्थिति अच्छी हुई थी। बौद्ध धर्म की महायान शाखा कश्मीर में पनपी थी अथवा शुरुआत हुई थी। कुषाण वंश के राजा कनिष्क के शासन काल के दौरान बौद्ध धर्म की प्राकृत भाषा संस्कृत में इस्तेमाल की गई थी तथा बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया गया। चीनी यात्री ह्वेनसांग के द्वारा इसी समय कश्मीर में वसुमित्र सहित 500 विद्वान हुए थे।

नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वसुगुप्त के द्वारा शैव मत की नींव रखी गई थी। इससे पहले कश्मीर में बौद्ध और नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव था। वसुगुप्त के शिष्य 'कल्लट' और 'सोमानंद' ने शैव दर्शन की नई परंपरा शुरु की। शैव मत अनुयायी अभिनवगुप्त ने 'तंत्रालोक' और प्रत्यभिज्ञा दर्शन की रचना की। 10वीं सदी में शंकराचार्य का अद्वैतवाद दर्शन कहता है कि अगर ब्रह्म सत्य है तो जगत भी सत्य है और शिव-शक्ति एक-दूसरे के पूरक है।

कश्मीर में कवित्रियों के होने का भी उल्लेख है, जिसमें पहली कवित्रिशैवयोगिनीललद्मद (ललेश्वेरी) भी समसामयिक संस्कृति की प्रेणता थी। इसने भी शैव धर्म का प्रचार-प्रसार किया था।

अंततः यह समझा जा सकता है कि कश्मीर एक ऐसा राज्य है जहां पर विद्वान, ऋषि, शासक जैसे महान व्यक्ति हुए। राजनीति का नींव, संस्कृत शिक्षा केन्द्र, बौद्ध मठ, मंदिर जैसे सामाजिक स्वरुप की झलक सर्वप्रथम यहीं पर देखने को मिलती है। बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार मुख्य रुप से महायान की शुरुआत कश्मीर में ही हुई। सम्राट अशोक के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करवाया गया। कश्मीर की सामाजिक, सांस्कृतिक परंपरा का फैलाव वैदिक काल तक हुआ। अतः आधुनिक काल में कश्मीर समस्या को सुलझाने हेतु कश्मीर का इतिहास आवश्यक है जिसके माध्यम से विभिन्न समस्या का हल निकाला जा सके। कश्मीर एक संपन्न राज्य भी था जहां कोई भी शासन कर सकता था, जिसका कारण वहां की वादियां, खूबसूरती और शांतिप्रय माहौल था। भारत के पहले वंश (नागवंश) का प्रारंभ कश्मीर में ही हुआ, जिसके बाद अन्य वंशों का आगमन हुआ। इतिहास गवाह है कि कश्मीर राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परंपरा से संपूर्ण थी। इसलिए कश्मीर को लेकर विभन्न विवादों का समाधान सरकार द्वारा तथ्यात्मक प्रमाणों एवं साक्ष्यों के आधार पर बिना किसी को ठेस पहुचाएं संपूर्ण बहुमत से सुलझा लेनी चाहिए, जिससे राष्ट्र का स्वरुप निखर के उभरे और पड़ोसी देशों में शांति बनी रहें।

संदर्भ ग्रंथ की सूचीः

1. अग्रवाल नीलम- कल्हणकृतराजतरंगिणी, किताब महल प्रकाशन्, इलाहाबाद, 1968 ।
2. मत्स्य पुराण-14.2, 14.3 ।
3. नीलमत पुराण।
4. M.I. Mikhailov & N.S. Mikhailov- Key of the Vedas, Minskvinius, 2005.
5. P.N.K. Bamzai- Culture and Political History of Kashmir, Volume I, MD Publication, 1994.
6. S.K. Sopry- Glimpses of Kashmir, APH Publication & Corporation, 2004.
7. Krishan Lal Kalla- The Literary Heritage of Kashmir, Mittal Publication, 1985.
8. Dr. B.R.- Ambedkar- The Buddha and His Dhamma (Hindi Translation), Samyak Prakashan, New Delhi, 2019.
9. Subhash Kak- Kashmir and its people studies in the evaluation of Kashmiri Society, APH Publication, New Delhi, 2004.

वर्ण व्यवस्था -बनाम-जाति व्यवस्था

अमला ठुकराल - सेवानिवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्षा
दिल्ली पब्लिक स्कूल, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली

'समान प्रसवात्मिक जाति' जिनका समान रूप से प्रसव होता है वह जाति कहलाती है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त अपरिवर्तित रहे, अनेक में एकता की बोधक हो वह जाति कहलाती है। यह जाति ईश्वरकृत होती है। इस प्रकार मनुष्य घोड़े, गाय, कुत्ता आदि जातियाँ हैं। आज पूरा विश्व मनुष्य निर्मित जाति व्यवस्था से त्रस्त है। कहीं धार्मिक विभाजन है, कहीं नस्लीय भेद है, कहीं रंगभेद है तो कहीं आर्थिक भेद है। सभी अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए एक दूसरे को समाप्त कर देना चाहते हैं। विश्व में जहाँ कहीं भी युद्ध है उसमें मूल कारण में यही मानव निर्मित जाति व्यवस्था है ।

हमारे वेदों, धर्मग्रन्थों और मनुस्मृति में जातिवाद का कोई आधार नहीं है। वर्ण व्यवस्था है। मनुष्य जाति के चार वर्ण होते हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये वर्ण इसलिए कहलाते हैं कि ये वरण किये जाते हैं। मनुष्य समाज को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए इसके चार विभाग ही किये जा सकते हैं और यह आवश्यक भी है। पूरे विश्व में यही चार प्रकार के विभाग ही दिखायी देते हैं क्योंकि मनुष्य के अंतर्मन के चार स्वभाव हैं। इस विभाग को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं- Wiseman, Soldierman, Businessman और Commonman.

वर्ण व्यवस्था एक व्यवस्था है। यह जन्मना न होकर कर्मणा होती है। वैदिक काल में यह मान्यता थी कि सभी मनुष्य आर्य पैदा होते हैं। ब्राह्मण भी आर्य था और शूद्र भी आर्य। मनुष्य अपने गुण, कर्म व स्वभावानुसार जिसका वरण करता है उसे वर्ण कहते हैं। जिस प्रकार किसी कन्या द्वारा जिसका वरण किया जाता है उसे वर कहते हैं। वर्ण कभी किसी पर न थोपा जा सकता है और न अन्य मनुष्य इसका निर्धारण करता है। वर्ण को मनुष्य स्वयं अपने स्वभाव, रूचि व योग्यतानुसार ग्रहण करता है। मनुष्य अपने स्वभाव और रूचि में परिवर्तन भी करता है। इस प्रकार वह अपना वर्ण भी परिवर्तित कर लेता है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जात्मेवन्तु विद्यद्वैश्यात्थैव च ॥ मनु

ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य का पालन न कर पाने पर शूद्र हो सकता है और शूद्र अपने कर्म, तप और आचरण द्वारा ब्राह्मण बन सकता है। इस परिवर्तन से उच्च वर्ण के मनुष्य में निम्न वर्ण में जाने का भय और निम्न वर्ण से उच्च वर्ण में जाने का उत्साह बना रहता है। इन चारों वर्णों में तीन वर्ण द्विज कहलाते है जिनका भाव आचार्यरूप पिता व विद्यारूपिणी माता से जीवन प्राप्त कर होता है। जो पढ़ाने से न पढ़ सके और सिखाने से यदि न सीख पाया तो उसके समक्ष दो ही मार्ग है-एक मार्ग तो द्विजों से द्वेष करता हुआ वह असुर बन जाये अथवा दूसरा मार्ग द्विजों का सहयोग करे। इस सहयोग करने के कार्य का वरण करने से उसका शूद्र वर्ण है। यह शूद्र जहां आसुरी पाप कर्मों से बच जाता है वहां द्विजों के संग से उन्नति करता हुआ स्वयं भी ब्राह्मणादि वर्णों को प्राप्त कर लेता है।

सभी को शिक्षा का समान अवसर देना चाहिए। गरीब, अमीर, अधिकारी और नेता के बच्चों को समानरूप से एक ही जगह शिक्षा देना चाहिए। कृष्ण और सुदामा का उदाहरण हमारे समक्ष है।

सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण तीन चीजें पैदा होती हैं-अज्ञान, अन्याय और अभाव। ब्राह्मण विद्या दान देता है, क्षत्रिय अभय दान देता है, वैश्य धन दान देता है और शूद्र

श्रम दान देता है। पर यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि मध्य काल में हमारे समाज में इस वर्ण व्यवस्था ने विकृत रूप धारण कर लिया था। सर्वत्र छुआछूत का प्रचलन हो गया था। लोग शूद्रों के हाथ का छुआ नहीं पसंद करते थे। घरों में खाना पकाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया जाता था। जबकि ब्राह्मणों का कार्य वेद पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना होता है।

यह सभी को मानना होगा कि एक शूद्र भी सभी सेवा कार्य कर सकता है हाँ यदि वह साफ सफाई का विशेष ध्यान रखता है तो। हमने श्रम दान को व हाथ के कार्यो को निम्न स्थान दे दिया है अतः आवश्यकता है कि सही परिप्रेक्ष्य में इस वर्णव्यवस्था को देखें और समाज को so called जातियों में न बांटें।

यदि हमारे पास पर्याप्त संसाधन हैं और नागरिक सुसभ्य हैं तो किसी आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। परंतु यदि अव्यवस्था है और संसाधनों पर सीमित लोगों का अधिकार है तो आरक्षण देना चाहिये। परंतु आरक्षण वैसा होना चाहिये जिस प्रकार बस में वृद्ध व विकलांग आदि के किये सीट आरक्षित होती है पर ड्राइवर की सीट पर कोई आरक्षण नहीं होता।

वैदिक मंत्र/सूक्तियां

१. **मधुमन्ये निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्।**
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥ अथर्ववेद १/३४/३
मेरा पास आना मधुमय हो, मेरा बाहर जाना मधुमय हो अर्थात् ज्ञान तथा रस से भरा हो। वाणी से मैं बहुत ज्ञान वाला रसयुक्त बोलूँ और मैं ज्ञान रूपवाला, मधुर रूपवाला रहूँ।

२. **स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।**
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ ऋग्वेद ५/५१/१५
हम लोग सूर्य और चन्द्रमा के सदृश स्वस्ति अर्थात् कल्याण मार्गों के अनुगामी हों और पुनः दान करने और न नाश करने वाले विद्वान के साथ मिलें।

३. **शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।**
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फ़ातिं समावह॥ अथर्ववेद ३/२४/५
हे मनुष्य! सैंकड़ों और हजारों प्रकार से कर्म-कुशल होकर और सहस्त्रों कर्म कुशलों से मिलकर धन-धान्य एकत्र करे और उत्तम कर्मों में व्यय करके आगा-पीछा सोचकर सदैव उन्नति करता रहे।

LINKWELL INDUSTRIES

E-49 GREATER KAILASH PART-1, NEW DELHI 110048

MANUFACTURER OF TWO WAY INDUSTRIAL SOLENOID VALVE

PERFECT

Types ISV/ISVD are designed for use in media WATER. OIL, AIR, GAS, METHANE, BUTANE, PROPANE, and can be used for various applications such as:

- Oil Burners
- Gas Burners
- Humiditying Plants
- Compressed Air System
- Low Pressure Hydraulic Systems
- Flushing Systems
- Liquid Metering
- Irrigation Systems

011-46091722 · 9312834330 linkwell.naresh@gmail.com

Contact : Naresh Malhotra

न्यूरोथेरेपी द्वारा... दर्द से

तुरंत राहत सिर्फ 1 उपचार

कई लाभ

SWADESHI NEUROTHERAPY
Treatment & Training Centre

न्यूरोथेरेपी द्वारा पूरे शरीर का उपचार होता है यह शरीर में चल रही बीमारी व भविष्य में बीमारी आने की संभावना को खत्म करने में सक्षम है।

NO
- PAIN
- DRUG
- SIDE EFFECTS
- EXERCISE
- INSTRUMENTS

Blood Circulation Control Based Pressure Therapy

Advanced drugless therapy

"LET YOUR BODY TREAT ITSELF"

अपने परिवार के संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए अपनायें..

सर्वश्रेष्ठ दवा रहित चिकित्सा पद्धति..

आप भी बन सकते हैं न्यूरोथेरेपी Healer

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें

आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48

9899352528 www.swadeshineurotherapy.com

Panini Mahavidyalaya

Ram Lal Kapoor Trust

Knowledge liberates
सा विद्या या विमुक्तये

About Us

Ram Lal Kapoor Trust was set up in 1928 under the guidance of Pujya Guru ji - Pt. Brahmadtta ji Jigyasu to research ancient Vedic literature, its safe custody and its dissemination. To serve the society through Indian culture, education, science and medicine.

The objectives are achieved by

- Publication of Ved Vani - It has Articles covering Vedic Literature and Vedic philosophy apt for scholars.
- Panini Mahavidyalaya - Teaching Sanskrit Shastras according to the system introduced by Swami Dayand Saraswati.
- A Research wing - All research work of the Mahavidyalaya is published by Ramlal Kapoor Trust.

Our Work

- Research and publication of Vedic literature
- Publications ✔ Education ✔ The Library ✔ Printing Press

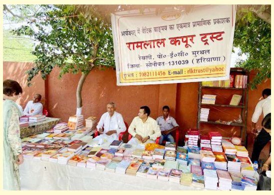

Aims and objectives of the trust

- Preserve and protect our ancient Vedic Texts.
- Research and Spread the Vedic Dharma.
- Research of ancient Vedic Literature, it's safe custody.
- To serve the Society through Indian Culture, Education, Science and Medicine.

Revali, Post- E. C. Murthal, Sonipat- 131039, Haryana, India
Phone: +91 7082111456 • Email: info@rlktrust.in or office@rlktrust.in